भारतीय बिचार धारा

लेखक

'नये युग के नये बिचार' के लेखक

आचार्य पं० रामानंदजी शास्त्री

प्रकाशक

नवीन प्रकाशन मन्दिर,

१५/३५ मानमन्दिर—बनारस।

प्रथम संस्करण   १९४७   मूल्य २)

प्रकाशक
वासुदेवप्रसाद गुप्त,
नवीन प्रकाशन मन्दिर,
मानमन्दिर—बनारस ।

मूल्य दो रुपया

मुद्रक
पण्डित जानकीशरण त्रिपाठी,
सूर्य प्रेस, बुलानाला, काशी ।

भूमिका

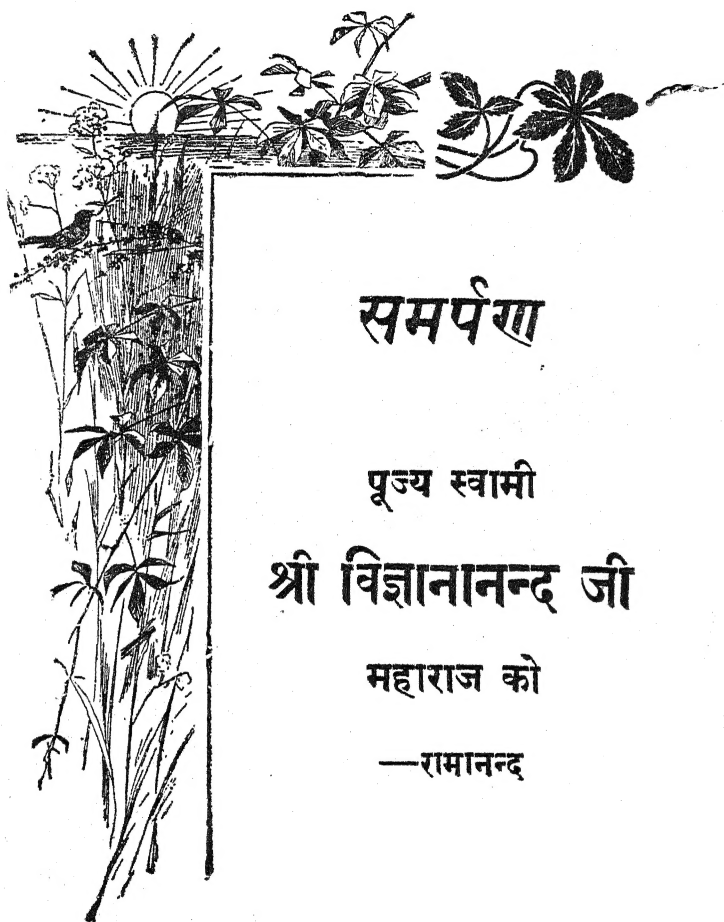
भारत एक महान् देश है, इसकी संस्कृति और सभ्यता बहुत पुरानी है। और देशों के लोग जिस समय जंगली जीवन व्यतीत कर रहे थे उस समय यह दार्शनिक बिचारों के उपरी स्तर पर पहुँच चुका था। आज भी इसके ध्वस्त खण्डहर भग्नप्राय सौध उस दिन की स्मृति दिलाते हैं। किन्तु बलिष्ट काल के प्रभाव से यह महादेश आज परतन्त्रता की शृङ्खला से निगडित हो गया। इसकी भाषा, वेष और भूषा में घोर परिवर्त्तन हो गया। विदेशियों द्वारा लिखी हुई पुस्तकों के पाठ से उसको अपने गौरव में संदेह होने लगा।

किसी २ को राम के आदर्श मय जीवन में संदेह होने लगा तो कोई कृष्ण को काल्पनिक व्यक्ति कहने लगे। किसी २ ने यहाँ तक कह दिया कि—सम्पूर्ण भारतीयज्ञान यूनानी पण्डितों का उच्छिष्ट है। इसलिये इस लघुकाय पुस्तक के द्वारा "भारतीय बिचार धारा" को जताने की चेष्टा की गयी है। जिससे विचारक लोग इससे अधिक विचार प्रस्तुत करें।

साथ ही मैं अपने प्रिय शिष्य सर्वेन्द्रजी शास्त्री को धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता जिन्होंने इसके लिखने में मेरी सहायता की है। मैं केवल बोलता जाता था वे अपनी द्रुत गति से उसे लिपिबद्ध करते जाते थे। अन्त में मैं नवीन प्रकाशन मन्दिर के अध्यक्ष वासुदेव प्रसाद गुप्त को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने शीघ्रही इसे प्रकाशित कर जनता के समक्ष पहुँचा दिया।

विनीत—

रामानन्द शास्त्री।



समर्पण

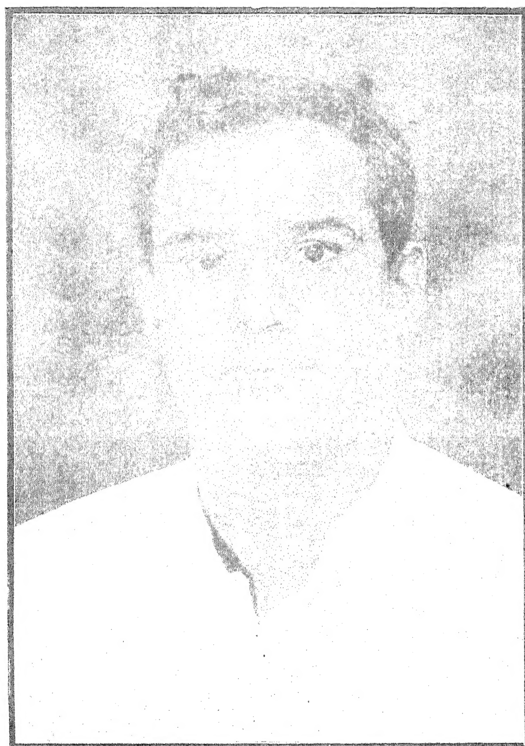
पूज्य स्वामी

श्री विज्ञानानन्द जी

महाराज को

—रामानन्द

भारतीय विचार धारा



लेखक—

विषय-सूची

भारतीय विचारधारा

वेद

विश्व-साहित्य में वेद सबसे प्राचीन है। जिस समय समस्त संसार को किसी भी ग्रन्थ का पता नहीं था, उस समय ऋषि लोगों में यह सुना जाता था। परम्परा से सुने जाने के कारण इसे श्रुति भी कहते हैं। हिन्दू शास्त्रकारों का कहना है कि वेद परमात्मा से प्रकट हुआ। जिन शास्त्रकारों का मत है कि परमात्मा नहीं है,* वे लोग भी वेद ज्ञान की 'अनादिता' में विश्वास करते हैं। भगवान् मनु ने कहा है कि ‡ भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान की समस्त क्रियायें वेद से ही सम्पन्न होती हैं। सैनापत्य, राज्य, दण्डविधान और लोगों पर शासन करना भी वेद से ही जाना जाता है। व्याकरण महाभाष्यकार पातञ्जलि का कहना है कि व्याकरण पढ़ने का अन्तिम उद्देश्य वेदों का पढ़ना ही है। अतः मनु को इस प्रतिबन्ध की व्यवस्था करनी पड़ी कि जो कोई विद्वान् वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है, वह द्विज कर्मों से बहिष्कार करने के योग्य है। एक व्यक्ति विना एक वेद पढ़े गृहस्थ आश्रम का भागी नहीं हो सकता। † स्वामी शंकराचार्य अपने ब्रह्म सूत्र भाष्य में वेद को सर्वविद्या

---

* सांख्यवादी

‡ भूतं भव्यं भवच्चैव सर्वं वेदात् प्रसिध्यति।

† ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेक विद्यास्यानेस्यवृहितस्य प्रदीयवत् सर्वार्थाव द्योतिनः सर्वज्ञ कल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। नहीदृशस्य शास्त्रस्य-

विभूषित कहते हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी वेद को सब सत्य विद्याओं की पुस्तक कहा है। कर्तव्य-निर्णय में वेद का सर्वोपरि स्थान है। इसलिए आर्यावर्त के त्यागी, तपस्वी ब्राह्मण-वृन्द प्राचीन काल से इसे कण्ठस्थ करता चला आया है। आज प्रचुर वर्षों से वेद का प्रचार होता हुआ भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं हुआ। अन्य धर्म की पुस्तकों की उत्पत्ति के समान वेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अनेक लौकिक गाथायें प्रचलित हैं।

पौराणिक गाथायें कहती हैं कि ब्रह्मा के स्वाँस से वेद निकले। यजुर्वेद भाष्यकार उब्वट और महीधर यजुर्वेद की तैत्तरीय शाखा को तित्तिर द्वारा चुंगा हुआ बतलाते हैं। साधारणतया वेद के सम्बन्ध में अधोलिखित प्रकार से सैद्धान्तिक ६ विभाग किये जाते हैं—

(१) मीमांसामत—वेद अकृतक हैं, अपौरुषेय हैं और कूटस्थ नित्य हैं।

(२)···वेद ईश्वरकृत हैं, पौरुषेयापौरुषेय हैं और अनित्य हैं।

(३) प्राचीन न्यायमत—वेद ईश्वर कृत हैं, पौरुषेय हैं और प्रवाह नित्य हैं।

(४) सांख्यमत—वेद प्राकृतिक हैं, अपौरुषेय हैं और अनित्य हैं।

(५) वैशेषिक मत—वेद महर्षिकृत हैं, पौरुषेय हैं और अनित्य हैं।

र्ग्वेदादि लक्षणस्य सर्वज्ञ गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवाऽस्ति। यद् विस्तारार्थं शास्त्रं यस्मात् पुरुष विशेषात् संभवति यथा व्याकरणादि पाणिन्यादे र्ज्ञेयैक देशार्थमपि स ततोप्यधिकतर विज्ञान इति सिद्द लोके किमु वक्तव्यम्।

(६) नास्तिकमत—वेद साधारणग्रामीण मनुष्यों की व्यवस्था का शास्त्र है।

ये सिद्धान्त भारतीय विद्वानों के हैं परन्तु आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द ने विविध शास्त्रों के आलोचन के पश्चात् यह निश्चय किया है कि वेद सबसे पूर्व अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरादिक द्वारा आत्मज्ञान से प्रादुर्भूत हुए। वह परमात्मा का ज्ञान है अतः उसमें इतिहास का समावेश नहीं। यह सिद्धान्त भी समुचित ज्ञात होता है क्योंकि निरुक्त-कार यास्क ने कहा है कि—

तत्को वृत्रः मेघ इति नैरुक्ताः। त्वाष्ट्र आसुर इति ऐतिहासिकाः अर्थात् वृत्र किसको कहते हैं, इस प्रश्न के उत्तर में कहा है कि निर्वचन कर्त्ता वृत्र मेघ को मानते हैं और ऐताहासिक लोग तो त्वष्ट्रा के पुत्र असुर वृत्र को बतलाते हैं। जहाँ जहाँ आवश्यकता पड़ी है वहाँ वहाँ यास्क ने निर्वचन कर ऐतिहासिक विचार-धारा को निर्मूल कर दिया है।

प्राचीन शास्त्रकार ऋषि को द्रष्टा (ज्ञाता) मानते हैं न कि कर्ता। पाश्चात्य पण्डितों का यह विश्वास है कि वेद समय-समय पर रचे गए। उसके अन्तर्गत आर्यों के बाहर से आने का वर्णन है। परन्तु उनका यह कथन प्रमाण शून्य और अर्थ क्रम हीन होने से निर्मूल हो जाता है। वशिष्ठ, विश्वामित्र और जमदग्नि आदि शब्द रूढ़ि गत नहीं किन्तु व्युत्पत्ति परक अर्थों के द्योतक हैं। निरुक्तकार कहते हैं कि—विश्वामित्रः सर्व मित्रो भवति, अर्थात् विश्वामित्र सर्वाधिक वरिष्ट योगी को कहते हैं। ऋषि दयानन्द ने इसके अर्थ को प्रकाशित किया।

स्वामी दयानन्दके प्रशस्त भाष्य को देखकर विश्रुतयोगी अरविन्द घोषने कहा है कि जिस वेद को भाष्यकारों की मूर्खता के

कारण असत्य पुस्तक समझी जाती थी, उसी वेद को महर्षि दयानन्द ने अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य द्वारा प्रमाणित कर दिया कि यह ईश्वरीय ज्ञान है। इसमें न केवल ईश्वर-भक्ति का ही उपदेश है किन्तु वह समस्त ज्ञानों का प्रकाश-स्तम्भ है। सृष्टि के प्रारम्भ में संसार के मनुष्यों के पथ-प्रदर्शनार्थ परमेश्वर ने ऋषियों के हृदय में इसका प्रकाश किया। यदि दयानन्द जी ने प्राचीन प्रणाली से वेदों का अर्थ किया और वेद को स्वत: प्रमाण मानकर वेद द्वारा ही वेद के अर्थों को स्पष्ट किया। स्वामी दयानन्द का यह सिद्धान्त वेद से भी सिद्ध होता है कि एक ही परमात्मा विभिन्न गुणों के कारण भिन्न भिन्न नामों से पुकारा गया है। स्वामी जी के विचारों का अध्ययन करने से मानना पड़ता है कि वेद के अग्नि आदि नाम किसी देवता के नहीं अपितु परमात्मा के विशेषण हैं। इस कारणवश सायण ने वेद से जो गल्प-गाथाएँ और देवी-देवताओं की पूजा निकाली है, वह सत्य नहीं। पाश्चात्य विचारकों की यह धारणा कि—वेद में केवल धार्मिक और स्वर्गिक बातों की ही चर्चा है, मिथ्या है। वेद के अन्तर्गत ईश्वरभक्ति, विज्ञान और दार्शनिक तत्त्व सब कुछ हैं। वेद भूल रहित और ईश्वरीय पुस्तक* है।

योगी अरविन्द घोष का उक्त कथन बिल्कुल सत्य है। महाविद्वान् मैक्समूलर इस बात को स्वीकार करते थे कि वेदों के अन्तर्गत सम्पूर्ण धार्मिक विचार-धाराओं का स्रोत है। वैदिक रहन-सहन का भी स्तर ऊँचा है। प्रचलित साम्य-वाद से वैदिक धर्मी का जीवन पवित्र है। वेद कहता है कि

---

* Bankim, Tilak and Dayanand

केवल अपने ही खाने पीने वाला आदमी पापी है। † एक स्थान पर कहा गया है कि—न कोई छोटा है, न बड़ा है, हम सब परमात्मा के पुत्र हैं। बलवान् और निर्धन सब को साथ रहना है। यजुर्वेद में लिखा है कि विश्व नियन्ता परमेश्वर सब स्थानों पर उपस्थित है, परमात्मा द्वारा दिए गए धन से संतोष करो और किसी दूसरे की सम्पत्ति का अपहरण मत करो। वेद प्रत्येक प्राणि के लिये समस्त संसार को मित्र की दृष्टि से देखने का आदेश करता है। ऋगुवेद के अन्तर्गत नासदीय सूक्त ऊँच दार्शनिक विचार का आदि कारण है। अघमर्षण सूक्त सृष्टि का क्रमानुकूल वर्णन करता है। विभिन्न उपमाओं के द्वारा कहा गया है कि जिस प्रकार एक अग्नि बहुत प्रकार प्रकट होता है—कहीं जठराग्नि के रूप में तो कहीं ताप के रूप में, एवं एक ही सूर्य लोक लोकान्तर को प्रकट करता है, उसी प्रकार एक ही उपादान कारण से इन सम्पूर्ण वस्तुओं का विकास हुआ है।

खगोल सम्बन्धी ज्ञान भी वेदों में पर्याप्त है। अधिक मास तथा राशियों का वर्णन भी किया गया है जो लोग कहते हैं कि भारतीयों को राशियों का ज्ञान नहीं उन्हें ऋग्वेद का यह मन्त्र—"द्वादश प्रधयः प्रचक्रे" देखना चाहिए। कहीं जल तो कहीं अग्नि तथा वायु आदि का विशद वर्णन किया गया है और एक एक सृष्टि का विकास बताया गया है। बहुत काल के पश्चात् आयोनिया निवासी श्रीथेलिज को—जल से ही सृष्टि होती है—इसका ज्ञान हुआ। ऋग्वेद और पुरुषसूक्त सृष्टि उत्पत्ति का क्रम वर्णन करता है, जिसमें जीवनि का उत्क्रान्ति-सिद्धान्त (Evolution)

---

† केवलाघोभवतिकेवलादी ऋग्वेद—

प्रकट होता है। यह सब होते हुए भी आर्य लोग एक शक्ति के उपासक थे। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में कहा गया है कि— "एकं सद् विप्राः बहुधा वदन्ति अग्नि यमं मातरिश्वानमाहु:" अर्थात् एक ही वस्तु को विद्वान् लोग भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं। यजुर्वेद में लिखा है कि एक प्रकाश स्वरूप परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है। * सरलतया अलङ्कारिक भाषा में कठिन समस्याओं को समझाने में वेदमंत्र अपनी तुलना नहीं रखते। प्रसादमयी भाषा में इन्द्र-वृत्रासुर युद्ध द्वारा सूर्य और मेघ, देव और असुर एवं सत्त्वगुण और तमोगुणमयी प्रकृतियों का विशद वर्णन किया गया है। आचारिक शिक्षा की महत्ता वेदों में पर्याप्तरूप से वर्णित है। ब्रह्मचर्य की प्रशंसा में अथर्ववेद में कहा गया है कि—ब्रह्मचर्य से देवता लोग मृत्यु को भी जीत लेते हैं।—"ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है" यह सारांश है।

पारिवारिक जीवन की ओर निर्देश करते हुए अथर्ववेद कहता है कि—पितुरनुव्रतः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः, जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतुशान्तिवान् अर्थात् पिता के अनुकूल पुत्र को होना चाहिए और संतति माता को प्रसन्न रखने वाली हो। स्त्री को अपने पति से मधुमती वाणी बोलना चाहिए। सूर्या सूक्त में वैवाहिक सम्बन्ध को पवित्र बताया गया है। वर-बधु दोनों मिलकर प्रतिज्ञा करते हैं कि हम एक दूसरे का वरण सौभाग्य की वृद्धि के लिए करते हैं। हम दोनों का यह पवित्र सम्बन्ध भौतिक ही नहीं किन्तु दैवी प्रेरणा से हुआ है। फिर दोनों प्रतिज्ञा करते हैं कि इस मण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग समझ लें कि हम दोनों का हृदय ऐसे ही हो गया है जैसे कि

---

* नान्यः पन्था विद्यते अयनाय।

दो स्थानों का मिला हुआ जल एक हो जाता है। ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त में एकता का संदेश दिया गया है बताया गया है कि समस्त मनुष्यों का मन एक सा हो। सम्पूर्ण संसार को आर्य बनाने का आदेश दिया गया है। बहुत लोग समझते हैं कि 'आर्य' जाति अथवा कोई समुदाय है जो कि अन्य जातियों से पृथक् है। परन्तु वेद में आर्य श्रेष्ठ को कहा गया है। काले गोरे का कोई भी भेद वेद में नहीं है।* वेदविदेश के लिए संकुचित राष्ट्रीयता वेद में नहीं है। वैदिक धर्म मानव धर्म है। वह विश्व-कल्याण के लिए है। इस धर्म में किसी व्यक्ति विशेष के पीछे चलने को नहीं कहा गया है। अपितु बुद्धि की प्रशंसा की गयी है। निरुक्त में लिखा है कि जब ऋषि परम्परा नष्ट हो गई तब तर्क ही ऋषि बनकर आया और तर्क से वेद मन्त्रों का अर्थ होगा। इस प्रकार तर्क बुद्धि का आदर किया गया है। हिन्दुओं द्वारा गाया हुआ 'गायत्री मन्त्र' बुद्धि की याचना करता है। ज्ञान का आदर करने वाला श्रेष्ठ होता है, आर्य लोग श्रेष्ठ थे उनका वेद श्रेष्ठ और अक्षुण्ण आज भी बना हुआ है। वह पुराना होता हुआ भी नया है एवं विश्व के लिए एक पहेली, विद्वानों के लिए विचारणीय और योगियों के लिए मनन करने के योग्य है। आर्य लोगों ने इसी को उपजीव्य मान कर गहरे तत्त्वों का अविष्कार किया है।

आज इतिहास का पुनरावर्त्तन हो रहा है। आर्यों के अन्तर्गत नव जीवन का संचार हो गया है। भारत वसुन्धरा पुनः वेद मन्त्रों से गुञ्जित हो रही है, नवयुवकों की अभिरुचि बढ़ रही है। निश्चय ही इसकी उज्ज्वल ज्योति विश्व के प्राङ्गण

---

* अज्येष्ठासोऽकनिष्ठास एते—ऋग्वेद

‡ मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे—यजुर्वेद

में छिटकेगी और खद्योत के समान बिछे हुए मत मतान्तरों का जाल छिन्न-भिन्न हो जाएगा और परम पावन वेद भगवान् का शुभ् उदयन होगा।

ब्राह्मण—वेदों के बाद ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम आता है। ये संख्या में चार हैं, इनका नाम ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ हैं। ऋग्वेदादि चारों वेदों के ये भाष्य कहे जाते हैं। बिना इनका अध्ययन किए हुए हम वेदों को अच्छे प्रकार नहीं समझ सकते। कुछ लोगों का विचार है कि ब्राह्मण वेद ही है, किन्तु प्राचीन शास्त्र इसके प्रतिकूल है। व्याकरण शास्त्र के आचार्य महावैयाकरण पाणिनि वेद और ब्राह्मणों को अलग अलग करते हैं। यास्काचार्य निरुक्त में ब्राह्मण ग्रन्थों का दृष्टान्त वेद के नाम पर कहीं नहीं दिया है। शतपथ में ऋषियों के चरित्र का उल्लेख भी मिलता है। कात्यायन ने—मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्" लिखा है, परन्तु प्रश्न यह होता है कि क्या कात्यायन के पूर्व यह विचार काम कर रहा था कि ब्राह्मण वेद नहीं हैं। तभी तो कात्यायन को यह लिखना पड़ा कि ब्राह्मण और मन्त्र वेद ही है। इससे भी यही पक्ष प्रबल होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं और न वेद के समान ग्रन्थ ही है। इन चारों के कर्त्ता अलग ऋषि हैं। ऐतरेय ब्राह्मण के कर्त्ता महीदास नामक चण्डालिन कन्या से उत्पन्न पुरुष था। जो लोग शूद्रों का वेद में अनधिकार बताते हैं, वैसे धर्म के ठेकेदारों को उसे अवश्य देखना चाहिये। जो कुछ भी हो तोभी ब्राह्मण ग्रन्थों से हमें ऋषियों की विद्या का गाम्भीर्य, सृष्टि विद्या, नक्षत्र-विद्या तथा रेखागणित आदि का परिचय प्राप्त होता है। ब्राह्मण का यज्ञ संकुचित नहीं है शतपथ कहता है कि—"यज्ञो वैश्रेष्ठतमं कर्म" अर्थात् जितने श्रेष्ट काम हैं वे सब

यज्ञ में गिने जाते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में यज् धातु जो विद्वानों का सत्कार संगतिकरण और दान अर्थ में प्रयुक्त होता है, उसका ठीक निकालना मिलता है।

शतपथ ब्राह्मण में वर्णित सृष्टि उत्पत्ति का सिद्धान्त कोण्ट और लाप्लास के वाद (Theory) से बहुत ऊँचा है। विशेष जानने के लिए 'शतपथ ब्राह्मण विज्ञान भाष्य' देखना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें बहुत अंश प्रक्षिप्त है। यदि नीरक्षीर विवेक की बुद्धि से इसका अध्ययन किया जाए तो उस समय के समाज का अधिकांश ज्ञान हो सकता है। उस समय के समाज में आज की भाँति प्रचलित जन्मानुसार वर्णाश्रम व्यवस्था नहीं था। वैवाहिक सम्बन्ध संकुचित सीमा में ही आवद्ध नहीं थी। देश-विदेश गमन पाप नहीं समझा जाता था। योग्यता का आदर किया जाता था। कर्मकाण्ड की ओर लोगों की प्रवृत्ति थी। देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। सर्वत्र आध्यात्मिक चर्चा होती थी। प्रमुख प्रमुख समस्याओं तथा विवादास्पद विषयों का समाधान बड़े २ यज्ञों में किया जाता था।

उपनिषद्—उपनिषद् भारतीय महर्षियों के बौद्धिक उन्नति की चरम सीमा का द्योतक है। इसमें गूढ़ सिद्धान्तों का समावेश सरल भाषा द्वारा किया गया है। जीवन का उद्देश्य आत्मा को समझना है, यही इसके उपदेश का सारांश है। वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने कहा है कि—

"न वा अरे प्त्युः कामाय पतिः प्रियो भवति,
आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति"..

आत्मा वामरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः, आत्मा वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन, मत्या, विज्ञानेनेदं सर्वं विज्ञातं भवति। वृहद० २।४।५।"

अर्थात्—पति के लिए पति प्रिय नहीं होता किन्तु अपने लिए पति प्रिय होता है। इसलिए अपने को जानना और समझना चाहिए। संसार की समस्त वस्तुयें अपने ही लिए हैं। राज, धर्म, साहित्य और विज्ञान आदि सम्पूर्ण आत्मा के लिए ही होते हैं, अतः आत्मा को ही समझना चाहिए। कठोपनिषद् में नचिकेता यमाचार्य के सामने कहता है कि—

"ये ये कामा विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।"

अर्थात् यह संदेह लोगों के अन्तर्गत चला आ रहा है—कोई कहता है कि मरने के पश्चात् हमारी सत्ता रहेगी, दूसरा कहता है कि नहीं शरीर के साथ ही हमारा विनाश हो जाएगा। इन दोनों में कौन सा विचार सत्य है, इसका समाधान करिए। यम बहुत प्रलोभनों से नचिकेता को संतुष्ट करना चाहता है—कहता है कि तुम्हारी आयु बहुत हो जाएगी। तुम्हें किसी बात की कमी नहीं रहेगी-तुम इस प्रश्न को मत पूछो। किन्तु नचिकेता कहता है कि अन्ततोगत्वा मृत्यु एक दिन अवश्य आएगी, अतः उस दिन के लिए हम क्या करेंगे? हमें इसी का उत्तर चाहिए। इसी प्रकार प्रश्नोंत्तरों द्वारा आत्मा को समझाया गया है। मुण्डकोपनिषद् में आता है कि—

"स सर्व विद्यां ब्रह्मविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह।"

अर्थात् ब्रह्मा ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को सारी विद्याओं की प्रतिष्ठा के हेतु ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया। उन्होंने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया—इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वे ऋषि सांसारिक विद्याओं की विशेषता नहीं देते थे। ईशोपनिषद् में परा और अपरा दोनों को जानने का आदेश है। परा विद्या की कितनी उन्नति थी, यह छान्दोग्य उपनिषद्

के इस प्रतीक से विदित होता है। नारद जब सनत्कुमार के पास पहुँचे तब उन्होने चौदह विद्याओं को गिनाया" सहोवाच ऋग्वेद भगवोऽध्येमि यजुर्वेद ॐ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासं पुरानं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाक्यो वाक्य मेकायनं देव विद्यां भूतविद्यां क्षत्र विद्यां नक्षत्र विद्यां सर्पदेव जन विद्या मेतद् भगवोऽध्येमि।

अर्थात्—उन्होने कहा भगवन्—मैं ऋग्वेद (Science of defination) यजुर्वेद (Science of joining) सामवेद (Science of equality) अथर्ववेद (Science of gaining) इतिहास (History) व्याकरण और दर्शन (Grammar and Philosophy) पितृ विद्या (Anthropology) गणितविद्या (Mathematics) देवविद्या (Physical Science) निधि (Minerology) वाक्यो वाक्य (Topic) देवविद्या (Ethics) ब्रह्मविद्या भूत विद्या (Biology) क्षत्र विद्या (Military) नक्षत्र विद्या (Astronomy) सर्पदेवजनविद्या (Scientific treatment Venom) आदि जानता हूँ।

तैत्तरीय उपनिषद् के शिक्षाध्याय में विद्याव्रती स्नातकों के लिए बहुत ही सुन्दर आदर्शमय उपदेश है। आचार्य कहता है कि सत्य बोलना, धर्म का आचरण करना और स्वाध्याय से मुख मत मोड़ना। समस्त कृत्य स्वाध्याय से ही सम्पन्न होते हैं। पुनः कहता है कि मुझमें जो अच्छे अच्छे आचरण हैं, उन्हें ग्रहण करना और मेरे दोषों को छोड़ देना। उपनिषद् ऋषि संसार को नहीं भूलते थे। वे समझते थे कि बिना भौतिक उन्नति के आत्मिक उत्थान असम्भव है। इसलिए उपनिषद् कहती है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः' अर्थात् निर्बल लोग इस आत्मा को समझ नहीं सकते।

उपनिषदों का रहस्य गम्भीर है। राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन और अरविन्द घोष आदि महानुभाव इसके गुणों पर मुग्ध थे। दाराशिकोह जो बादशाह शाहजहाँ का पुत्र था, उसने बुल्लत शाह के कहने पर उपनिषदों का अध्ययन किया और १६४० ई० में उपनिषदों का अनुवाद पर्सियन में प्रारम्भ किया जो कि १६५७ में समाप्त हुआ। वह उपनिषदों के ज्ञान से संतुष्ट था। उस अनुवाद की हस्तलिपि फ्रेंच में गयी और उसका अनुवाद लैटिन भाषा में हुआ। वह पुस्तक लैटिन भाषा में १८०१ में छपी, जिसको पढ़कर महातत्त्ववेत्ता शोपेन-हार ने लिखा है कि—

In the whole world there is no study, except that of originals, so leneficial and so eleralings as that of the Upanishad. It has been the so lace of my life, it will be the solave of my death.

अर्थात उपनिषदों के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं जो कि मुझे जन्म-मरण से शान्ति प्रदान कर सके।

निश्चय ही उपनिषदें संसार के रहस्मय ग्रन्थों में एक अमूल्य निधि हैं। इसके अन्तर्गत बौद्धों के प्रसिद्ध प्रचलित चार दार्शनिक सिद्धान्त सन्निहित हैं। हिन्दू दर्शनों की पष्ठभित्ति का बीज यहीं पर निहित है। थेलिज का जल-तत्त्व एनैम्सिमेन्डर अप-रिच्छन्न और एनैम्सिमेनीज का वायुद्रव्य और पैथागोरस का संख्याक्रमवाद सब इसी मूलभूत सिद्धान्त से निःसृत हैं। बिना उपनिषदों के अध्ययन के आध्यात्म विद्या अपूर्ण और समस्त ज्ञान भार स्वरूप है। निश्चय ही वह ज्ञान विनाश का हेतु होगा जिसपर आध्यात्म का नियन्त्रण नहीं होगा। आज यूरोप अपने विज्ञान के बल पर पक्षियों के समान उड़ सकता है, मछलियों

के समान तैर सकता है और मिनटों में ही दूर से बातचीत कर सकता है। आज समय और स्थान की दूरी जाती रही। मनुष्य के जीवनोपयोगी व्यवहार की समस्त वस्तुयें विज्ञान ने उपस्थित तो कर दिया परन्तु उसने यह नहीं बतलाया कि मनुष्य-मनुष्य के साथ कैसा व्यवहार करे।

"आज जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। संसार के एक तिहाई मनुष्य पशु-जीवन व्यतीत करने को वाध्य किए जाते हैं। क्या इसका कारण आत्म ज्ञान की शून्यता नहीं ? जिसके अभाव में यूरोप के लोगों का नैतिक पतन हो गया है। ईशोपनिषद् कहती है कि—"अन्धनतमः प्रविशंति ये अविद्यामुपासते, ततोभूय इवते तमोय अविद्या-याꣳरताः" अर्थात् वे लोग अन्धकार में जाते हैं जो कि विद्या की उन्नति नहीं करते—विद्या नहीं पढ़ते किन्तु उससे अधिक अन्धकार में वे लोग जाते हैं जो केवल विद्या में ही रत रहते हैं। आज सम्पूर्ण यूरोप इसका दृष्टान्त बना हुआ है। जंगली असभ्य जातियों से मानवता की उतनी हानि नहीं हुई जितनी आज के भौतिक उत्कर्ष से। अफ्रीकन निग्रो ने उतना संहार नहीं किया जितना संहार अमेरिका की सभ्य कही जाने वाली जनता ने जापानियों के साथ किया है कि सात लाख की जनसंख्या वाला हिरोशिमा नगर खण्डहर बन गया। ब्रिटिश, जर्मन और रूस आदि भी इससे अछूता नहीं है। इसका वास्तविक रहस्य यह है कि उन्होंने विद्या का उपार्जन तो किया किन्तु उसका नियन्त्रण नहीं किया। अतः उपनिषद् विद्या ऐसी अनियन्त्रित विद्या को नियन्त्रित करने वाली विद्या है। गैस अच्छी वस्तु है, वह कारखाने के यन्त्रों को चलाती है, लाखों वस्त्रहीनों को

वस्त्र प्रदान करती है और सैकड़ों मन चीनी मिनटों में पैदा करती है परन्तु वही गैस यदि अनियन्त्रित हो जाए तो लाखों काम करने वाले मजदूरों का सत्यानाश कर देगी। उपनिषद् ने ज्ञान को भी आग के रूप में कहा है। जिस प्रकार आग भोजन तैयार करती और प्रकाश करती है किन्तु अनियन्त्रित होने पर देश का विनाश कर देती है। उसी प्रकार विद्वान् भी एक आग है जो कि नियन्त्रित रह कर अच्छी अच्छी वस्तुओं का आविष्कार करता है परन्तु वही जब दूषित राष्ट्रीयता के चंगुल में पड़ जाता है, तब लोगों के विनाश का कारण बन जाता है। उपनिषद् ज्ञान इसी को नियन्त्रित करने के लिए भारतीय महान् तपस्वी ऋषियों के मस्तिष्क से निकला हुआ है। इसलिए आर्य सभ्यता के सर्वस्व भारतीय ऋषिगण ही हैं। प्रस्थानत्रयी में उपनिषद का स्थान है। आज हजारों वर्षों से उपनिषदों के पठन-पाठन का प्रचार है, उपनिषद् विश्व-साहित्य का अनुपम रत्न है। इसकी बिचार-धारा एक है। इसका संदेश अमर, नित्य, पवित्र और सर्व सुखदायक है। यह सब होते हुए भी प्रगतिशील हिन्दू जाति ने इतने से ही संतोष नहीं किया और वह अपने अनुसन्धान से आगे बढ़ती रही और विश्व के सामने अन्य उपयोगी साहित्यों का निर्माण भी करती रही, जिसकी प्रशंसा करता हुआ संसार नहीं थक रहा है।

रामायण और महाभारत—रामायण की रचना आदि कवि वाल्मीकि के द्वारा हुई है। इसके सम्बन्ध में एक किंवदन्ती है कि एक बार बाल्मीकि मुनि अपने आश्रम से नदी के तट जल लाने जा रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक क्रौंच अपनी पत्नी क्रौञ्ची के साथ क्रीड़ा कर रहा है। इसी अवस्था में किसी निर्दय व्याध ने उन पर बाण छोड़ा और क्रौञ्च तत्काल चल बसा।

क्रौञ्ची के विलाप एवं कारुणिक दशा के कारण आदि कवि द्रवीभूत हो गए और उनके मुख से अनुष्टुब् छन्द में पद्यमयी भाषा निकलने लगी। उसी कविता की शक्ति से आदि कवि ने वाल्मीकि रामायण का निर्माण किया, जो आज प्रत्येक हिन्दू की जिह्वा पर है। कोई भी ऐसा हिन्दू नहीं मिलेगा जो कि रामायण के प्रधान पात्र श्री मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के सम्बन्ध में नहीं जानता हो!

साथ ही कुछ ऐसे भी वैदेशिक विद्वान् हैं जो कि रामायण की कथा को मानसिक कल्पनामयी गाथा सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक को भी इसकी मौलिकता में सन्देह था। वे इसे ऋग्वेद के दशगवास का विस्तृत रूप मानते हैं। भदन्त आनन्द कोशल्यायन दशरथ जातक की छायापर बाल्मीकि रामायण की रचना मानते हैं। कुछ लोग इसे इलियड् की चुराई हुई कविता कहते हैं। प्रस्तुत लेख में इन समस्त विचारों का उत्तर देना उचित नहीं होगा, क्योंकि राम के जीवन की घटनाएँ ऐतिहासिक सम्बन्ध तथा उनकी वंश-परम्परा आदि राम के अस्तित्त्व के ज्वलन्त प्रमाण हैं। साथ ही साथ रामनवमी आदि पर्व और लोकोक्तियाँ हिन्दू जाति के हृदय में इतना स्थान प्राप्त कर चुकी हैं कि मेकाले के मानस पुत्र उसे कदापि दूर नहीं कर सकते। भदन्त आनन्द कौसल्यायन अयोध्या काण्ड के दृष्टान्त के बल पर बुद्ध के बाद रामायण की रचना सिद्ध करना चाहते हैं, परन्तु उनका यह प्रयास सिकता से तेल निकालने के समान ही असम्भव है। बाल्मीकि के कुछ असम्भव बुद्धि विरुद्ध क्षेपकों से रामायण की सत्यता पर सन्देह करना उचित नहीं। इस प्रकार तो बुद्ध के सम्पूर्ण पिटक भी असत्य सिद्ध हो जायेंगे। क्योंकि पिटकों में इतनी

असम्भव बाते हैं जिन पर कोई भी बुद्धिमान् तर्कप्रिय मनुष्य विश्वास नहीं कर सकता। जैसे बुद्ध के जन्मावसर पर इन्द्र आदि देवताओं का आना (बुद्ध जातक) तथा दातुन के छिलके से सद्यः आम्रवृक्ष का हो जाना (बुद्ध चर्या) आदि। क्या इन बातों के आधार पर कोई कहेगा कि भगवान् बुद्ध हुए ही नहीं थे। सत्यान्वेषी असम्भव बातों का परित्याग कर सत्य का अन्वेषण करता है। हिन्दू-कुल-भूषण रामचन्द्र और उनका रामायण हिन्दू जाति का जीवन है। राम के समान महापुरुष विश्व के इतिहास में अप्राप्य है। उनकी एकमात्र धर्मपत्नी भगवती सीता हिन्दू आदर्श नारियों की पथ-प्रदर्शिका हैं।

वाल्मीकि ने नारद से पूछा कि इस समय संसार में बलवान्, गुणवान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ और स्थितप्रज्ञ कौन है? चरित्र से सम्पन्न एवं सर्व प्राणियों के हित में कौन लगा रहता है? कौन विद्वान्, समर्थ और प्रिय दर्शन है। आत्मवान्, जितक्रोध, द्युतिमान् और दूसरों की निन्दा नहीं करने वाला कौन है? रण में किसके क्रोध से देवता लोग भी डरते हैं। इसका उत्तर एक शब्द में नारद ने दिया है कि इन समस्त गुणों से सम्पन्न इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न भगवान् राम हैं। सत्य में ही भगवान् राम के जीवन में यह विशेषता मिलती है। इसीलिए हिन्दू जाति इस आदर्श जीवन को अपने अन्तर्गत उतारने की चेष्टा करती है तथा प्रातः-सायं राम का स्मरण कर सच्चरित्र बनती है।

इस प्रकार वाल्मीकि रामायण इतिहास और काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट बाल्मीकि भारती कवियों का पथ-प्रदर्शक एवं आदि गुरु है। उसकी वर्णन-शैली साहित्यिक और मनोहारी है। उसके मध्य-मध्य में पात्रों के द्वारा धर्मोपदेश सोने में सुगन्ध का काम करता है। 'सत्यं शिवं सुन्दरं' भारतीय साहित्य का

उदात्त उद्देश्य है, जिसका पूर्णतया पालन रामायण के अन्तर्गत किया गया है।

रामायण में वर्णित स्थानों के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने पर मुनि के भौगोलिक ज्ञान की ऊच्चता प्रकट होती है। मानों प्रत्येक स्थान पर जाकर कवि ने राम के जीवन का परिचय प्राप्त किया है। राम आदर्श थे। उनका जीवन पवित्र था, उनकी वीरता अनुपम थी और उनका राज्य स्वर्ग को तिरष्कृत करने वाला था, जिसकी कल्पना आज विश्व-वन्द्य महात्मा गान्धी करते हैं। ऐसे आदर्श को आज के मानव तक पहुंचाना तथा कराल कलिकाल के घोर सांस्कृतिक विप्लव में उसे अक्षुण्ण रखना यह वाल्मीकि की लेखनी की बिशेषता है। जिसे तपस्वी हिन्दू साधुओं ने जावा, सुमात्रा आदि देशों में फैला दिया, जहाँ आज राम-मन्दिर स्थित है। महाकवि, तुम धन्य हो।

महाभारत—महाभारत को हिन्दू धर्म का शब्दार्णव (Encyclopedia) कहना चाहिए। इसके रचयिता कृष्ण द्वैपायन ब्रह्मसूत्र के कर्त्ता हैं। उसके अध्ययन करने से हिन्दुओं की युद्ध-कला, राजनीति, धर्मनीति और विशद विद्या का पता चलता है। पर्वों में विभक्त महाभारत लक्ष श्लोकों से युक्त यह विशाल ग्रन्थ संसार के प्राचीन गाथा-ग्रन्थों में सबसे बड़ा है। इसमें पगपग पर धर्म और राजनीति का समावेश होने से अपूर्व मानसिक आनन्द प्राप्त होता है। जहाँ कहीं अवसर मिला है, कवि ने वहीं पर एक न एक ज्ञान की शाखा का उपदेश किया है। आज पाश्चात्य जगत् उस पर मुग्ध है। रूस में इसका अनुवाद हो रहा है। महाभारत के भीष्म पर्व में उपदिष्ट ७०० श्लोकों वाली गीता संसार में अपनी समता नहीं रखती। जिस पर आज तक १२०० टीकायें संसार के विभिन्न प्रमुख भाषाओं में

प्रकाशित हो चुकी हैं। महातत्त्ववेत्ता एमर्सन इसे नित्य पढ़ा करते थे। विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी ने इस पर टीका लिखी है और आज भी वे प्रतिदिन इसका नियमित पाठ करते हैं। योगी अरविन्द, जिसके सम्बन्ध में फ्रेञ्च के महान् विद्वान् रोम्यां रोलाँ ने लिखा है कि उनके समान पूर्व और पश्चिम में विद्वान् नहीं हैं, वे गीता का स्वाध्याय करते हैं और उन्होंने उस पर भाष्य भी लिखा है। शान्ति पर्व संसार से विरक्त करता है। भीष्म, द्रोण और कर्ण पर्व में युद्ध-कला का वर्णन है। उद्योग पर्व में राजनीति का वर्णन है जो कि प्रचलित राजनीति (Politics) से किसी प्रकार न्यून नहीं है। कहीं पर शतरंज की शिक्षा तो कहीं पर पक्षियों के उड़ने का क्रम और हस्ति नियन्त्रण आदि व्यावहारिक विद्यायें बहुत ही मनोहारी हैं। विद्या-व्यसनियों के लिए इसके उपदेश अद्वितीय तथा उपयोगी हैं। मध्य-मध्य में शास्त्र कूट विद्वानों को चक्कर में डालने वाला है। महाभारत हिन्दू-धर्म ग्रन्थों की कुञ्जी है। इसके प्रमाण स्वरूप धर्म समन्वय कारिणी गीता है, जो कि स्पष्ट शब्दों में पुकार कर कहती है कि 'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति', अर्थात् हे तात! कल्याण मार्ग पर चलने वाला मनुष्य कभी दुर्गति प्राप्त नहीं करता है। गीता का यह उपदेश कि 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैव भजाम्यहम्', अर्थात् जो मेरे पास जिस प्रकार से आता है, उसे मैं वैसे ही मानता हूँ। यह उत्तम उप-देश सुवर्णाक्षर में लिखने के योग्य है। गीता में निष्पक्षतया समस्त सच्चाइयों का अधिकार पूर्ण शब्दों में उल्लेख किया गया है। अतएव प्रत्येक हिन्दू आदर के साथ इसका पाठ करते हैं और उसके उपदेशों को कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न करते हैं। "विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि

चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः" अर्थात् बुद्धिमान् व्यक्ति विद्या से सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चण्डाल में एक ही आत्मा देखते हैं। कितना उत्तम उपदेश है कि किसी को ऊचा नीचा मत समझो।

महाभारत का काल जाति के पतन का काल है। यदि रामायण और महाभारत की तुलना की जाए तो आचारिक, धार्मिक और सामाजिक प्रचुर परिवर्तन दृष्टिगत होगा। कहाँ रामायण के समय वर्णाश्रम व्यवस्था कर्मानुकूल थी जिसके कारण विश्वामित्र क्षत्रिय ब्राह्मणत्व को प्राप्त किए वहाँ बेचारा एकलव्य इसलिए तिरस्कृत किया गया कि वह एक धीवर कुलोत्पन्न था। धीवर होने के कारण वह क्षत्रियों के मध्य बैठ कर शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता। जुआ की प्रथा चल पड़ी थी और भाई-भाई में द्वेष का बीज-वपन हो चुका था। राष्ट्र-शक्ति छोटे-छोटे राज्यों में बिभक्त हो गई थी। भगवान् कृष्ण इसका अनुभव कर रहे थे। अतः उन्होंने गीता में कहा है कि—यह परम्परा से आया हुआ सिद्धान्त नष्ट हो गया था। इसलिए एक मित्र जानकर तुम्हें यह बतला रहा हूँ। गीता के इस वाक्य से प्रकट होता है कि अवश्य उस समय धार्मिक पतन हो गया था। स्त्री और शूद्रों का स्थान जन्मगत हीन हो गया था। इसी कारण से तो कहा गया है कि—"मां पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः स्त्रियः शूद्रास्तथा वैश्याः सर्वे यान्ति परां गतिम्" अर्थात् हे अर्जुन, जो कोई हमारी बात को मानेगा, चाहे वह स्त्री, शूद्र या वैश्य हो श्रेष्ठ गति को प्राप्त करेगा। गीता अवश्य एक ओजस्विनी भाषा में लिखी गई महामुनि, प्रातः स्मरणीय कृष्ण-द्वैपायन वेद व्यास की अमर लेखनी का चतुर चमत्कार और भगवान् कृष्ण की वाणी का प्रतीक है। उसकी वाणी की शक्ति

और आकर्षण से कातर और भ्रान्त अर्जुन भी पारिवारिक मोह ममता त्याग कर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गया था। आत्मा के अमरता की शिक्षा गीता से प्राप्त कर आज भी सैकड़ों नवयुवक ब्रिटिश शासन की परवशता पिशाचिनी का प्राणान्त करने के लिए फाँसी के कुटिल बन्धन को सस्नेह चूम लेते हैं।

आज भी इस देश को कृष्ण ऐसे नेता की आवश्यकता है जो कि अपने आदर्श से अच्युत होता हुआ समस्त समागत सामयिक समस्याओं का समाधान करता और विशालकाय देश को राष्ट्रीय हित की रक्षा के लिए युद्ध-प्रियता और आत्म-अमरता की सुन्दर शिक्षा प्रदान करता।

दर्शन—दर्शन भारतीय मौलिक विचारों का महान् परिचायक है। भारतीय दर्शन का इतिहास पुरातन है। अपनी कुशाग्र बुद्धि से विश्व के तत्त्वों का ज्ञान समझाने में भारतीय दर्शन अग्रणी हैं। यूरोप में सर्व प्रथम दर्शन (Philosofy) शब्द का प्रयोग ईसा की ५०० शताब्दी पूर्व सोलेन के लिए किया गया था। यूरोप का प्रथम दार्शनिक थेलिज कहलाता है जो कि ज्योतिष-शास्त्र का भी पण्डित था। उसका समय ईसा की शताब्दी से ५०० वर्ष पूर्व का है। परन्तु आज से ३५०० वर्ष पूर्व ही भगवान् बुद्ध ने अपने व्याख्यानों में ६७ प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों का खण्डन किया है। जब कि उन्होंने उन सिद्धान्तों का खण्डन किया है तो पाठक सरल में ही अनुमान लगा सकते हैं कि उन ६७ सिद्धान्तों के प्रचलित होने में कितना समय लगा होगा। बुद्ध के समय भारतीय दर्शन के ६ सिद्धान्त (Schools) प्रचलित थे। स्वयं राजकुमार सिद्धार्थ ने आएड और कलाम आदि गुरुओं से सांख्य आदि की शिक्षा प्राप्त की थी। वेदमन्त्रों में योगशिक्षा

और उपनिषदों में सांख्य के बीज मिलते हैं। बहुत लोगों को भ्रम है कि सांख्य शास्त्र तथा गौतम रचित न्याय दर्शन ही आदिम ग्रन्थ हैं, किन्तु यह उनका भ्रम है। गौतम के न्याय के पूर्व भी आदित्य का न्याय-दर्शन प्रचलित था। महाभारत में आन्वीक्षिकी का नाम मिलता है। ब्रह्मचारिणी सुलभा तर्क-शास्त्र की प्रवर्तिका कही जाती है। सारांश यह है कि जिस समय सांख्यवादी पैथागोरस, प्रकृतिवादी हेरोक्लीटस, सुखवादी एपीक्यूरस और तार्किक अरस्तू के जन्म का पता भी नहीं था, उसके बहुत पहले भारतीय विचारकों ने ब्रह्मवाद (Monisn) से लेकर अनात्मवाद की शिक्षा प्रसारित की थी। भारतीय दार्शनिकों की विचार-धारा दो भागों में विभक्ति होती है—आस्तिक और नास्तिक। आस्तिक दर्शन ६ और नास्तिक दर्शन भी प्रायः उतने ही हैं। यहाँ पर मैं उन सबों के विचारों को उद्धृत करता हूँ।

न्याय दर्शन—परमाणों द्वारा अर्थ परीक्षण का नाम न्याय है। उसमें षोडश पदार्थों की कल्पना की गई है। ११ प्रमेय (जानने योग्य) विषय माने गए हैं। षोडश पदार्थों में प्रमाण प्रथम पदार्थ है। नैयायिकों के मत में मुख्यतः चार प्रमाण होते हैं। जिन्हें वे प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द कहते हैं, इन प्रमाणों का लक्षण नैयायिक बड़ी सतर्कता से करते हैं, जिसमें किसी प्रकार दोष न रह जाए। अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव दोषों से मुक्त को निर्दुष्ट लक्षण कहते हैं। नैयायिक किसी वस्तु को सिद्ध करने के लिए पञ्चावयव वाक्य का प्रयोग करते हैं। जिन्हें प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन कहते हैं। उदाहरण स्वरूप-पर्वत आगवाला है (प्रतिज्ञा) धुआँ होने के कारण (हेतु)

जहाँ जहाँ धुआँ होता है वहाँ वहाँ आग रहती है जैसे पाकशाला (उदाहरण) पर्वत भी वैसे ही है (उपनय) अतएव पर्वत आगवाला है (निगमन)। नैयायिकों का यही प्रधान गढ़ है, जिस पर उन्होंने अनेकों महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का निर्माण किया है। जो लोग साधारण जनता के बीच ईश्वर और आत्मा आदि का खण्डन करते हैं एवं परम्परागत ईश्वर-विश्वास और धार्मिक श्रद्धा पर कुटिल कटाक्ष करते हैं, उनकी अच्छी दवा नैयायिक करते हैं। नव्य और प्राचीन के भेद से न्याय दो विभागों में विभक्त है।

प्राचीन न्याय में न्याय सूत्रकार गौतम मुनि, वात्स्यायन, उद्योत के वाचस्पति मिश्र और जयन्तभट्ट आदि हैं। नव्य न्याय में मैथिल गंगेशोपाध्याय (नव्य न्याय प्रवर्तक) रघुनाथ शिरोमणि और बङ्ग प्रान्तस्थ मथुरानाथ जगदीश भट्टाचार्य आदि का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। जिस समय बौद्ध तार्किकों के कुतर्क से प्राचीन न्याय ध्वस्त हो रहा था, उस समय मिथिला निवासी श्री गङ्गेशोपाध्याय ने 'तत्त्वचिन्तामणि' नामक पुस्तक लिखकर न्याय-शास्त्र के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण अध्याय जोड़ दिया। प्राचीन सम्पत्ति को बचाकर नवीन अर्जित करने का नाम प्रगतिशीलता है। गङ्गेशोपाध्याय प्रगतिशील तथा वैदिक मर्यादा के रक्षक थे। उन्होंने बन्दूक का उत्तर तोप से दिया। जिसके कारण बौद्ध तार्किक उच्छिन्न हो गए। अब भी हमारी पण्डित मण्डली निरर्थक शब्दाडम्बर को रटा कर विद्यार्थियों को न्यायाचार्य बनाती है, जो कि बिल्कुल ज्ञान हीन होते हैं। आज का संसार सत्य का पुजारी है। वह किसी भी सिद्धान्त, तर्कशब्दाडम्बर अथवा अवच्छेदकावच्छिन्न भाषा होने से नहीं स्वीकार करेगा—

परीक्षण की आवश्यकता है। बिना परीक्षण के वाद नपुंसक है।

न्याय का साहित्य विस्तृत है। पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वान् इसके समक्ष नत हैं। इसके सिद्धान्त में ईश्वर निमित्त कारण और प्रकृति उपादान कारण हैं। आत्मा कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है। श्रुति भी यही कहती है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनशनन्न्योऽभि चाकशीति ॥

वैशेषिक—विशेष पदार्थ की कल्पना करने से इसका नाम वैशेषिक पड़ा वैशेषिक दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और अभाव ये सात पदार्थ माने गए हैं। अलग अलग इन सातों की व्याख्या है और इनके लक्षणों पर विचार भी किया गया है। वैशेषिक के मत से कर्म पाँच प्रकार के होते हैं। (क) उत्क्षेपण-(ऊपर फेंकना), (ख) अवक्षेपण (नीचे फेंकना), (ग) आकुञ्चन (सिकुड़ना), (घ) प्रसारण (फैलाना) और (ङ) गमन। तिर्यक् गमन आदि सब इन्हीं पाँच के अन्तर्गत आ जाते हैं।

वैशेषिक दर्शन परमाणुवादी है। इसके मत से आत्मा अणु और मन से पृथक् है। यह पदार्थ विद्या की सबसे पहली पुस्तक है। परमाणुवाद की कल्पना भारत की मौलिक देन है। ऋग्वेद में—"रजः किमासीद् गहनं गभीरं" द्वारा रजः (परमाणु) का उल्लेख किया गया है। बहुतों को भ्रम है कि कणाद ने परमाणुवाद का सिद्धान्त ग्रीक से लिया है। परन्तु ग्रीक के परमाणुवाद और भारत के परमाणुवाद में महान् अन्तर है। श्री बलदेव प्रसाद उपाध्याय लिखते हैं कि वैशेषिक दर्शन की यह परमाणु कल्पना स्वप्रतिभोत्पादित

सिद्धान्त है। ग्रीक दार्शनिक डिमाक्रिटस के परमाणुवाद से यह सिद्धान्त नितान्त भिन्न है। ग्रीस देशीय विवेचना के अनुसार परमाणु गुण रहित होते हैं, परन्तु उनमें तौल, स्थान, तथा क्रम का अन्तर होता है। कणाद के अनुसार तो परमाणु में विशेष गुण होता है। डिमाक्रिटस आदि ने परमाणु को स्वतः गमनशील तथा आत्मा को भी उत्पन्न होनेवाला बतलाया है। वे अनन्त आकाश में विचरण करते हुए पारस्परिक संघर्ष से स्वतः जगत् की सृष्टि करते हैं। क्योंकि ईश्वर के वहिष्कार कर देने से उनका कार्य भी सचेतन नियामक विद्यमान नहीं रहता, परन्तु वैशेषिक के सिद्धान्त इससे भिन्न ही ठहरते हैं। यहाँ परमाणु स्वभावतः निष्पन्द दशा में रहते हैं। उसमें स्पन्दन का आविर्भाव अदृष्ट के सहकार से ईश्वर की इच्छा से होता हैं। वे पृथिव्यादि भूत चतुष्टय की उत्पत्ति कर सकते हैं। आत्मा स्वयं नित्य द्रव्य है तथा उनके समान ही साथ साथ स्थिति धारण करती है। दोनों में तात्त्विक विभेद यह हैं कि ग्रीक सिद्धान्त भौतिकवाद का समर्थक है, परन्तु भारतीय सिद्धान्त भौतिकवाद का पोषक है। ऐसी दशा में डाक्टर कीथ का भारतीय परमाणुवाद के सिद्धान्त पर ग्रीक प्रभाव की कल्पना नितान्त निर्मूल है।

राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि कणाद को औलूक्य कहा जाता है। उल्लू प्राचीन यूनान का चिह्न हैं। परन्तु इस हेतु में कोई भी तथ्य नहीं है। क्योंकि औलूक्य नाम तो भारतीयवेदान्तियों का दिया हुआ है क्योंकि उसमें प्रकाश तथा तम का विचार किया गया है।

सांख्य दर्शन—सांख्यदर्शन भारत का प्राचीन दर्शन है। समस्त दर्शनों के समान इसका आदि स्रोत भी वेद है। उप-

निषद्, महाभारत तथा हिन्दू पुराणों में विशेषतया एवं आद्य शंकराचार्य ने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में प्रत्याख्यान करते हुए इसको शास्त्रानुमत माना है। इसके मत में सत्त्व, रज और तम-सावस्था का नाम प्रकृति है। पुरुष तथा प्रकृति के संयोग से प्रकृति में गति उत्पन्न होकर महत्तत्व की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार अहङ्कार और तन्मात्रा आदि का क्रम है। प्रचलित सांख्यवादी ईश्वर पर विश्वास नहीं करते हैं। पर क्या पुरुष की इच्छा शक्ति के बिना इतना बड़ा जगत बन गया, यह हमारी समझ में नहीं आता है! बौद्ध दर्शन का आदि स्रोत सांख्य दर्शन ही कहा जा सकता है। हैगल का आदर्शवाद (Idealism) और मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (डाय-लेक्टिल मिटिरियलिज्म) इसकी उपज है। निःसन्देह भारत ने सांख्य दर्शन द्वारा तत्त्वान्वेषण के समझाने में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। डार्विन का उत्क्रान्तिवाद (Evolution theory) सांख्य दर्शन की व्याख्या कही जा सकती है। परमाणुवाद से यह सिद्धान्त उत्कृष्ट है। कोई कोई सत्त्व, रज और तम मानकर इसकी व्याख्या भी करते हैं।

भारतीय वर्त्तमान युवक समाज जो पाश्चात्य दर्शन से प्रभावित है, वह भारतीय दर्शन को हेय समझता है। ऐसे लोगों को कम से कम सांख्य दर्शन अवश्य पढ़ना चाहिए। प्रसन्नता की बात है कि विद्वानों का ध्यान इधर गया हुआ है और सर राधा कृष्णन् तथा प्रो० ब्रजनाथ शील आदि ने इसकी ओर स्तुत्य प्रयास किया है। मेरा उद्येश्य दर्शन का संक्षिप्त परिचय देना है। विस्तृत विवेचना तथा विस्तृत ज्ञान के लिए तो मूल ग्रन्थों का अध्ययन करना ही उपयुक्त है।

योगदर्शन—संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो कि योग

की प्रशंसा तथा उसपर विश्वास नहीं करता होगा आस्तिक से लेकर नास्तिक तक सब लोग योग के चमत्कारों पर मुग्ध हैं। पातञ्जल योग का उद्देश्य चित्तवृत्ति का निरोध करना है। सिद्धि के लिए व्रती को आठ नियमों का पालन करना पड़ेगा। वे आठ नियम—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। यम—किसी प्राणी की हिंसा नहीं करना, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना और लालच न करना ये यम कहलाते हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, और ईश्वर-भक्ति ये नियम के अन्तर्गत आते हैं। उक्त क्रियायें मानव-समाज के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने वाली हैं। इसी कारण वश सब इस पर श्रद्धा करते हैं। भारत के ऋषि मुनियों ने इसी योग बल द्वारा गूढ़ से गूढ़ तत्त्वों का प्रणयन किया है। गणित, ज्योतिष और आयुर्वेद के बहुत बड़े सिद्धान्त इसी योग-सिद्धि से निःसृत हैं। तन्त्र शास्त्रियों का कहना है कि शक्ति (Serpentised) होकर हृदय में स्थित है। प्रत्येक आत्मा के अन्तर्गत वह महान् शक्ति है जिससे कि वह महान् बन जाए। क्या बट के छोटे से बीज के अन्तर्गत सम्पूर्ण बट नहीं या आम की गुठली में समस्त आम्र वृक्ष नहीं है? अतः सम्पूर्ण शक्ति वाला मनुष्य चराचरादि आत्मबल द्वारा अपनी शक्ति का संरक्षण करता है तब बुद्ध, शंकर, दयानन्द तथा गान्धी बनता है। योग की सिद्धि में अणिमा, गरिमा और लघिमा आदि सन्निविष्ट हैं, जिनके ऊपर विश्वास नहीं करने का कोई कारण नहीं है। आज भी भारत में योग का आदर है, जिसके बल पर लाखों विपत्तियों का सहन करता हुआ भारत भारत ही है।

पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा—पूर्व मीमांसा के कर्त्ता जैमिनी हैं। इन्होंने उपपत्तियों द्वारा यागकर्म वैदिक मन्त्रों का

समन्वय किया है। बिना इसके ज्ञान के वेद मन्त्रों का सच्चा अर्थ ज्ञात नहीं हो सकता है। इन बातों के अतिरिक्त मीमांसा का सिद्धान्त शब्द और अर्थ के सम्बन्ध में विलक्षण है। वह शब्द को नित्य मान कर बहुत कुछ वैयाकरणों के समकक्ष रखता है। मीमांसा सूत्र के ऊपर पातञ्जल महाभाष्य के समान शवर स्वामी का बृहद् भाष्य है। कुमारिल भट्ट का अलग मौलिक सिद्धान्त है।

उत्तर मीमांसा का दूसरा नाम वेदान्त दर्शन है। इसमें उपनिषदों के विचारों का समन्वय तथा ब्रह्म का निरुपण किया गया है। यह भी प्रस्थानत्रयी के अन्तर्गत है। इस शास्त्र का अन्तिम आशय क्या है, यह विवाद का विषय बना हुआ है। शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा माधवाचार्य आदि आचार्यों ने यद्यपि इसका भाष्य अपनी-अपनी विचार-धारा के अनुकूल किया है, तथापि यह विलक्षण ग्रन्थ है। इसमें बौद्ध, सांख्य और न्याय आदि सिद्धान्त का पर्याप्त खण्डन है। इस प्रकार भारतीय ६ दार्शनिकों ने पृथक् अपने-अपने मन्तव्यों की पुष्टि में पर्याप्त प्रयास किया है। आज का दार्शनिक संसार एक दूसरे की निन्दा तथा अपनी प्रशंसा के गीत गाने में समय यापन करते हैं। आर्य समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द को यह बात बुरी लगी और उस महापुरुष ने इन दर्शनों का समन्वय किया और बतलाया कि ये छः दर्शन एक ही सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं किन्तु वर्णन शैली भिन्न-भिन्न है। किसी ने सृष्टि के कारणों का पता लगाया तो किसी ने ब्रह्म पर विचार किया। हाँ, समझाने की विधि विभिन्न। वस्तुतः, स्वामी दयानन्द का यह प्रयास स्तुत्य है, जो कि दर्शन संसार में एकता स्थापित करता है। वह देवता है और उसका आदर

संसार करता है। जो अनेकता उत्पन्न करता है, उसको संसार हेय दृष्टि से देखता है।

बौद्धमत-आज से २५०० वर्ष पूर्व जिस समय वैदिक परम्परा लुप्त हो गई थी, कर्मकाण्ड के नाम पर गोमेध तथा अश्वमेध का प्रचलन था, सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा नें जिन मन्त्रों द्वारा ज्ञान, कर्म और उपासना का उपदेश दिया था, उनको भुला कर लोग केवल कर्मकाण्ड की ओर ही झुके हुए थे और उस कर्मकाण्ड में भी हिंसा का बाजार गर्म था। जन्मानुसार ब्राह्मण और क्षत्रियादि बनने की व्यवस्था थी, समाज में ऊँच और नीच का विषाक्त विचार चल रहा था, ऐसे अवसर पर गोरखपुर से उत्तर लुम्बिनी वन में एक महा-पुरुष ने शाम्य वंश में राजा शुद्धोदन के यहाँ जन्म धारण किया। उसका जन्म नाम राजकुमार सिद्धार्थ था। सिद्धार्थ की प्रवृत्ति वाल्यकाल से ही वैराग्य की ओर थी, इसी कारण से पिता ने उसका विवाह शीघ्र हो कर दिया। उसे एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ, जिसका नाम राहुल था।

एक दिन की घटना है कि राजकुमार सिद्धार्थ अपने सारथि छन्दक के साथ रथ पर बैठकर बाहर बन की शोभा देखने के लिए जा रहे थे। तब तक उन्होंने अपने सामने एक वृद्ध मनुष्य को आते हुए देखा और उसके प्रति पूछा कि* सारथि, बताओ—यह कौन है, जिसके केश सफेद हो गए हैं, लाठी के सहारे चल रहा है, अङ्ग शिथिल हो गए हैं, भौंहे

* क एष भो सूतनराभ्युपेतः केशैः सितैर्वर्णि विशिष्ट हस्तः भ्रू सहतांसि शिथिलानताङ्गः किं विक्रियैवा प्रकृतिर्यदृच्छा ॥

बुद्धचर्या सं ३ । २८ ।

लटक गई हैं, और झुककर चल रहा है, क्या इसकी विकृति स्वेच्छा से है ? सारथि छन्दक एक बुद्धिमान् अनुचर था। उसने भी वैसा ही उत्तर दिया जैसा कि उचित था। उसने कहा—कुमार ! रूप को नष्ट करने वाला, बल की विपति, शोक की योनि, रति की मृत्यु, स्मरण शक्ति की विनाशिका और इन्द्रियों का शत्रु बुढ़ापा इसे घेर लिया है। राजकुमार को बुढ़े की इस अवस्था पर दुःख हुआ और उन्होंने सारथि को राजभवन की ओर चलने को संकेत किया।

दूसरे दिन उसी प्रकार राजकुमार बाहर घूमने को निकले उस दिन उन्होंने एक बालक * को जिसका पेट बड़ा था, स्वाँसमात्र चल रहा था, पाण्डुशरीरवाला माँ, माँ पुकारते हुए उसे व्याधिग्रस्त देखकर सारथि को रथ लौटाने को कहा। इसी प्रकार तीसरे दिन एक मृतकशरीर को ले जाते हुए देखकर राजकुमार के मन में वैराग्य हो गया और वे घर से निकल पड़े। घर से निकल रोहिणी नदी पार कर अपने हाथों से आभूषणादि और बहुमूल्य वस्त्र हटाकर यति वेश धारण किया। उस समय का दृश्य इतना कारुणिक और मर्मस्पर्शी था, जिस समय राजकुमार अपने हाथों से शिर के केशों को काट अपना सम्पूर्णशाही सामान देकर छन्दक से बोले—सारथि, कन्थक (अश्व) को लेकर जाओ यह सब राज्य आभूषण गृह पर दे देना, मैं लौट नहीं सकता। ज्योंही सारथि घोड़े को लेकर चला त्योंहीं उसने प्राण त्याग दिया। राजकुमार का बन गमन और कन्थक की मृत्यु से बेचारा छन्दक शोक के असह्य भार से किसी प्रकार कपिलवस्तु की ओर चला।

---

* स्थूलोदरः श्वास चलच्छरीरः स्रतांसंकृश पाण्डुगात्रः।
अम्बेति वाच करुणं ब्रुवाणः परं समाश्रित्य नरः क एष ॥

राजकुमार सिद्धार्थ एक तपस्वी वेष में पर्यटन करते साधु और महात्माओं से मिलते हुए राजगृह आए। राजगृह के महाराज ने राजकुमार का आदर किया और कहा कि हे राजकुमार! आप यदि रहना चाहें तो समस्त राज्य की भोग सम्पत्तियाँ आपके लिए उपस्थित हैं। कुमार ने उत्तर दिया—महाराज! मुझे न वस्तु-कामना है न भोग-कामना। मैंने महान् बुद्ध-ज्ञान (अभिसंबाधित) की प्राप्ति के लिए गृह त्याग (अभिनिष्क्रमण) किया है। बहुत प्रार्थना करने पर भी जब वे राजसी वस्तुओं की ओर अन्यमनस्क ही दिखलाई पड़े तब वहाँ के राजा ने कहा कि आप निश्चय रूप से बुद्धत्व प्राप्त करेंगे। राजगृह से चलकर वे आलार कलाम तथा उद्धव राम-पुत्र के पास पहुंचे और समाधि की शिक्षा प्राप्त की। बुद्धत्व प्राप्ति के लिए अन्न-जल छोड़ कर तपस्या में रत हो गए। तपस्या-काल में प्रचुर दिन के निराहार के कारण उनका अस्थि पञ्जर मात्र शरीर रह गया था। इस विफल तपस्या से उन्हें आत्म शान्ति नहीं मिली। राजकुमार ने पुनः अन्न-जल ग्रहण करना प्रारम्भ किया, जिससे उनका शरीर पूर्ववत् स्वस्थ हो गया किन्तु आत्म ज्ञान की प्राप्ति की कामना वैसी ही बनी रही। बोध गया में सुजाता की खीर खाकर चिन्तन में लग गए। सात दिन के चिन्तन के पश्चात् उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति हुई, उनके मुख से शब्द निकल पड़े—दुखदाई जन्म बार बार लेना पड़ा। मैं संसार में (शरीरूपी गृह को बनाने वाले) गृहकारक को पाने के अनुसन्धान में निष्फल भटकता रहा। लेकिन गृहकारक! अब मैंने तुम्हें देख लिया। अब तू फिर गृह-निर्माण न कर सकेगा। तेरी सब कड़ियाँ टूट गईं, गृह शिखर विखर गया, चित्त को निर्वाण

प्राप्त हो गया, तृष्णा का क्षय देख लिया। अब राज कुमार सिद्धार्थ बुद्ध हो गए। उन्होंने अपने को सर्वज्ञ घोषित किया। धर्म प्रचार के उद्देश्य से सारनाथ आए और वहीं से धर्म चक्र प्रवर्तन प्रारम्भ किया। शिष्यों से कहा कि भिक्षु हो जाओ—बहुत मनुष्यों के सुख के लिए बहुत जनों के हित के लिए, लोकानुकम्पा के लिए—जो आदि में कल्याण कारी, मध्य में कल्याणकारी और अन्तमें कल्याणकारी है। बस शुद्ध (ब्रह्मचर्य) सदाचार का उपदेश करो। भगवान् बुद्ध के उपदेशों का बहुत प्रभाव पड़ा क्योंकि वे माध्यम मार्ग का उपदेश करते थे। वे प्रचलित जात-पाँत और छूआछूत को असत्य कहते थे। जो व्यक्ति दलित जातियों की भलाई करता है वह जनता की भलाई करता है। मिथ्या भेद-भाव को हटाने वाला महान् है। गौतम बुद्ध महान् थे। उनका तपस्या विशाल थी। उनकी बाणी में शक्ति और मुखमण्डल पर प्रदीप्ति थी। एक बार उनके उपदेशों का प्रभाव दिग्दिगन्तरों में फैल गया।

भगवान् बुद्ध के प्रभाव से प्रभावित होकर राजाओं ने राजगद्दी छोड़ दी। विलास प्रिय राज—परिवार की स्त्रियाँ भी गैरिक बाना पहन कर धर्म-प्रचार के क्षेत्र में उतर गईं। महाराजाधिराज अशोक की एक बहिन संघनिमा और प्रिय राजकुमार महेन्द्र ने भिक्षु के रूप में लङ्का में प्रचार किया और कुछ ही दिनों में उन लोगों ने लङ्का-वासियों को अपने धर्म में दीक्षित कर लिया। भारतीय बौद्ध पण्डित खोतान, चीन, जापान और तिब्बत में गए परन्तु उनके पास सम्पत्ति नहीं थी और न मुस्लिम प्रचारकों के समान तलवार का बल ही था। उन भिक्षुओं के पास केवल एक सत्यता थी, जिसके कारण वे बोर्नियो (वरुण) मलाया (मालमद्वीप) सिङ्गापुर, चीन और

जापान के लोग भारत बर्ष के चरणों में झुक गए। उन त्यागी, तपस्वी बौद्ध भिक्षुओं ने केवल धर्म का ही प्रचार नहीं किया अपितु अपने यहाँ ज्योतिष, आयुर्वेद आदि भारतीय विषयों का प्रचार किया। आज चीन और जापान आदि भारतीय संस्कृति से इतना प्रभावित हो गए हैं कि वहाँ से निकालने पर भी भारतीय संस्कृति नहीं निकल सकती। यह भारतीय संस्कृति की एक महान् विशेषता, है कि संस्कृति प्रचार में इसने तलवार का उपयोग या वहाँ का शोषण नहीं किया, जिस प्रकार आज विश्व की अन्य जातियाँ कर रहीं हैं। भारतीय विचार धारा में स्वार्थ हीनता एवं परोपकार प्रियता आदर्श-तया समादृत रहा है। प्राणिमात्र की निःस्वार्थ सेवा ही जहाँ मुख्य उद्येश्य है प्रत्येक हिन्दू चींटी से लेकर कुंजर तक में एक ही आत्मा का दर्शन करता है, इसलिए किसी भी प्राणि की हिंसा करना महापाप समझता है। भगवान् बुद्ध और उनके शिष्य इसके उज्ज्वलन्त प्रमाण हैं। एक समय की घटना है कि राजा कुटदन्त के यहाँ यज्ञ था, लाखों पशु यज्ञ में बलि के लिए जा रहे थे। यह बात तथागत को ज्ञात हुई कि ये निर्दोष पशु आज मारे जाएंगे। करुणा से लावित शास्ता ने पूछा कि कोई उपाय है, जिससे कि ये पशु न मारे जांए। लोगों ने कहा कि यदि एक आदमी प्रसन्नता से अपना प्राण अर्पित कर दे तो ये समस्त पशु बच जायेंगे। भगवान् बुद्ध ने कहा कि यह सौदा तो बहुत सस्ता है और शीघ्र ही जाकर उन्होंने कहा कि मेरा बलिदान करो किन्तु निरीह तथा निरपराध पशुओं को मत मारो। एक बार सभा में सन्नाटा छा गई। राजा कुटदन्त ने तथागत के चरणों में झुक कर प्रणाम किया और बौद्ध भिक्षु बन कर प्राणि मात्र की सेवा का व्रत अङ्गीकार किया। सर राधाकृष्णन् ने लिखा

हैं कि एक समय एक बौद्ध भिक्षु कहीं वाटिका में भ्रमण करने जा रहा था। उस भिक्षु ने अपने सामने एक कुत्ते को देखा। जिसके शरीर में कीड़े लगे हुए थे और वह कुत्ता छटपटा रहा था। भिक्षु का उदार हृदय दया से उमड़ पड़ा और उसने अपने शरीर से माँस का टुकड़ा काट कर अलग रख दिया और कुत्ते के शरीर में लगे हुए कीड़ों को उसपर रख कर दया का अभूतपूर्व उदाहरण उपस्थित किया। विश्व-सेवा के ऐसे महान् आदर्श बौद्ध-भिक्षुओं ने अपने जीवन में उतारा था। ऐसे अनेकों अन्य दृष्टान्त भी हैं, जिसका प्रस्तुत प्रबन्ध में समावेश करना लघुकाय ग्रन्थ में असम्भव है।

भगवान् बुद्ध राष्ट्र-निर्माता और लाखों वर्षों की तपस्या से निष्कृत भारतमाता के रत्न थे। ऐसे महापुरुष से निर्धन और भूखा भारत भी आज धनी है, अभिमानी है और समस्त संसार का शिरोमणि है। कोई राष्ट्र हिमालय के समान सुवर्ण एकत्र कर सकता है किन्तु ऐसे महापुरुषों को नहीं एकत्र कर सकता जो विश्व ब्रह्माण्ड के हीरा और जवाहरात से अधिक मूल्य रखते हैं।

भगवान् बुद्ध की मृत्यु के बाद—भगवान् बुद्ध की मृत्यु के कुछ दिनों के पश्चात् उनके उपदेशों में परिवर्त्तन देख कर संग्रह करने की प्रवृत्ति बौद्ध भिक्षुओं में हुई। तीनों पिट्टकों का संग्रह किया गया। भगवान् बुद्ध लोक भाषा के बड़े परिडत थे। एक कथा विनय पिट्टक के चुल्ल वर्ग में आती है कि एक समय-यमेर यमेरते कुल नामक ब्राह्मण जाति के सुन्दर (कल्याण) बचन वाले, सुन्दर बचन बोलने वाले दो भाई भिक्षुक थे। वे वहाँ गए जहाँ भगवान् बुद्ध बैठे थे। उन दोनों भिक्षुकों ने भगवान् से कहा—मन्ते, इस समय नाना नाम,

गोत्र, जाति, कुल के (पुरुष) प्रव्रजित होते हैं। वह अपनी भाषा में बुद्ध बचन को दूषित करते हैं। अच्छा हो भन्ते! हम बुद्ध बचन को छन्द में बना दें। भगवान् ने फटकार पूर्वक कहा—भिक्षुओ! यह अनुक्त है, अनुचित है......। भिक्षुओं! न यह अप्रसन्नों (श्रद्धा रहितों) को प्रसन्न करने के लिए है न पुरुषों की श्रद्धा और बढ़ाने के लिए है, परन्तु भिक्षुओं! यह अप्रसन्नों को और भी प्रसन्न करने के लिए है और प्रसन्नों में से भी किसी किसी की श्रद्धा को विपरीत करने वाला है।

फटकार कर धार्मिक कथा कह भगवान् ने भिक्षुओं को सम्बोधित किया, भिक्षुओ! बुद्धवचन को छन्द में नहीं करना चाहिए, जो करेगा उसे दुष्कृत का अपराध लगेगा। भिक्षुओं! मैं अनुमति देता हूँ कि अपनी भाषा में बुद्धवचन सीखो। मागधी उस समय देश की भाषा थी। प्राकृत लोग उसी में बोलते थे, अतः भगवान् बुद्ध ने उसी में अपना भाषण किया मागधी का नाम ही पाली पड़ा। यद्यपि पाली कोई भाषा नहीं है। बुद्ध बचन को ही परिचाय कहते हैं। परिचाय से ही पाली हो गया, पालि का अर्थ शक्ति होता है। बुद्ध बचन के लिए प्रयुक्त 'पालि' शब्द भाषा के लिए प्रयुक्त होता था। उस समय भारत में सर्व समझी जानी वाली संस्कृति भाषा थी। प्राकृत भिन्न भिन्न स्थानों की भिन्न भिन्न थी। भगवान् बुद्ध ने मागधी में अपनी पंक्ति सुनाई, इसलिए भी पालि शब्द प्रयुक्त हुआ होगा। पालि वाङ्मय के त्रिपिटक का विस्तार अधो-लिखित क्रम से है—

(१) सुत्तपिटक—(क) दीघनिकाय (ख) मज्झिम निकाय (ग) संयुक्त निकाय (घ) अंगुत्तर निकाय (ङ) खुद्दक निकाय।

(२) विनय पिटक- (क) महावग्ग (ख) चुल्ल वग्ग, (ग) पाराजिक (घ) पाचित्तिचादि (ङ) परिवार पाटि।

(३) अभिधाम पिटक——(क) धमासंगणि (ख) विभंग (ग) धातु कथा (घ) पुत्तगलपञ्ञत्ति (ङ) कथा वत्थु (च) यमक (घ) पट्ठान।

भगवान् बुद्ध के उपदेशों से अपने अपने विचारानुकूल अर्थ लगा कर चार दार्शनिक सिद्धान्त प्रचलित हुए। जिन्हें योगाकार, माध्यमिक, सौत्रान्तिक और वैभाषिक कहते हैं। मानमेमोदय में संक्षिप्त सिद्धान्त इस प्रकार दिया गया है—

मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यात्र मेने जगत्,
योगाचार मते तु सन्ति मतयस्तासां विवर्त्तो ऽखिलः।
अर्थोऽस्ति क्षणिक स्त्वसावनुमितो बुद्धयेति सौभान्तिकः,
प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुर च सकलं वैभाषिको भाषते॥

मेरा उद्देश्य यहाँ पर दार्शनिक सिद्धान्तों का विवेचन करना नहीं है। निश्चय ही बौद्ध धर्म के पण्डित स्थिरमत्ति, दिङ्नाथ, धर्मकीर्त्ति, धर्मपाल, नागार्जुन, आदिदेव, स्थाविर बुद्ध पालित, चन्द्राकीर्ति और शान्त रक्षित की पुस्तकें पाण्डित्य पूर्ण हैं। जिनकी पुस्तकों का अनुवाद संसार की सम्पूर्ण भाषाओं में हुआ है। निश्चय ही बौद्ध युग भारतीय उत्कर्ष का एक गौरवपूर्ण युग था। देश में जात-पाँत का भेद नहीं था। 'नव कनौजिया निनान्बे चुल्हा' का प्रचार नहीं था। यवन मिनिडर को मिहिन्द बनाकर हिन्दू धर्म में दीक्षित किया गया। नालन्दा में प्रसिद्ध अन्ताराष्ट्रीय विश्व विद्यालय था, जहाँ पर देश-विदेश के विद्यार्थी पर्याप्त संख्या में आकर विद्याध्ययन करते थे। प्रत्येक विषय की शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। आज भी उस विश्वविद्यालय का विशाल ध्वंसा-

वशेष उपस्थित है, जिसे देखकर पाश्चात्य संसार मुग्ध हो रहा है। अशोक के शिलालेख और स्तूप भारतीय गौरव के गीत आज भी गा रहे हैं। मदान्ध मुस्लिम शासकों ने उसे उखाड़ फेंकने की चेष्टा की। नालन्दा में आग लगाई गई, पुस्तकें फाड़ी गई किन्तु उसका फल कुछ भी नहीं निकला। इन्हीं कारणों से इस्लाम संसार की दृष्टि से गिर गया। अच्छी संस्कृति अमर होती है। भारतीय संस्कृति अच्छी है अतः वह अमर है। भगवान् बुद्ध के उपदेश मानव संसार के लिए कल्याणप्रद हैं, जो किसी के नष्ट करने से भी नष्ट नहीं हो सकता।

जैन धर्म—भारतीय संस्कृति के निर्माण में बहुत ईंटें लगी हुई हैं, जिनका उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है। जैनमत भी भारतीय संस्कृति के निर्माण में अपना विशेष महत्त्व रखता है। यह उदार तथा समन्वयवादी सिद्धान्त यद्यपि बौद्ध धर्म के पहले प्रकट हुआ तथापि बौद्ध धर्म की ख्याति देश-देशान्तरों में विख्यात है। विश्व का धार्मिक जगत् आबाल-वृद्ध बौद्ध धर्म से परिचित है, अतः बौद्ध धर्म की चर्चा प्रथम की गई। इसके आद्य प्रवर्तक पार्श्वनाथ कहे जाते हैं। इनके पिता काशी के राजा अश्वसेन थे। इनकी माता का नाम महारानी वामादेवी था। ई० सन् ८१७ वर्ष पूर्व इनका जन्म काशी नगरी में हुआ था। आपने तीस वर्ष तक राजसौध में निवास के पश्चात् विपुल सम्पत्ति का परित्याग कर भिक्षुओं का जीवन स्वीकार किया। घोर तपस्या के अनन्तर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया। ७० वर्ष की अवस्था में इनका निर्वाण हुआ। पार्श्वनाथ चार महाव्रतों को मुख्य मानते थे। वे चार मुख्य व्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा

अपरिग्रह हैं। इनके ढाई सौ वर्ष पश्चात् मुजफ्फरपुर जिले के वसाढ़ नामक स्थान में एक महापुरुष का जन्म हुआ। जिन्हें अन्तिम तीर्थङ्कर कहा जाता है। जिनका पूर्व नाम वर्धमान था जो कि पश्चात् महाबीर नाम से विख्यात हुए। इन्होंने अहिंसा आदि चार महाव्रतों के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य का भी समावेश किया। पार्श्वनाथ श्वेताम्बरी थे। शुक्लवस्त्र का परिधान कर संसार में त्याग का उपदेश करना उनका उदात्त उद्देश्य था। किन्तु महावीर ने वस्त्र का परित्याग कर दिया। अतः जैनों में श्वेताम्बर और दिगम्बर ये सम्प्रदाय प्रचलित हुए। जैनों के मत में वन्ध इनका नाम है। क्योंकि अपने कर्मों के कारण जो शरीर मिलता है उससे एक प्रकार का ऐसा आवरण हो जाता है, जिससे कि सब वस्तुओं का ज्ञान छिप जाता है। आत्मा पर से आवरण के हट जाने का नाम मुक्ति है। समस्त शरीर और इन्द्रियाँ धर्म और अधर्म के अनुगामी परमाणुओं से मिल कर बनी हैं जिनको पुद्गल भी कहते हैं। परमाणुओं का दूसरा नाम पुद्गल भी है। ये परमाणु धर्म और अधर्म के पीछे चलते हैं और उन्हीं से शरीर का निर्माण होता है।

जैन साधुओं का जीवन त्यागमय-जीवन का सजीव उदाहरण है। ये कपड़ा नहीं पहनते हुए, मन-वचन और कर्म से किसी प्राणि की हिंसा नहीं करते हुए संसार में विचरते हैं। * इन साधुओं के हाथ में मोरपङ्ख रहते हैं और

---

* प्राणिजातमहि सन्तो मनावाक् काय कर्मभिः।
दिगम्बराश्चरन्त्यत्र यामिनो ब्रह्मचारिणः।
मयूर पिच्छ हातास्ते कृत वीरा सनादिकाः।
पाणि पात्रेण भुञ्जानाः यूनके शाश्च मौनिनः।
मुनयो निर्मलापूशुद्धाः प्रणतामथौघ मेदिनः।

ये वीरआसन लगाते हैं। हाथ में ही भोजन भी करते हैं। वे केश नहीं रखते और मौन धारण किए रहते हैं। ये मुनि निर्मल शुद्ध और हृदय के होते हैं। उनमें इतनी शक्ति होती है कि जो उनके सम्मुख शिर नवाता है उसके पाप नष्ट कर देते हैं।

जैनियों का दार्शनिक सिद्धान्त बहुत ही बिलक्षण है। इन्होंने माइनस्टाइन से २॥ हजार वर्ष पूर्व सापेक्षवाद की नींव डाली थी। हिन्हें निम्नरूप में कहा जा सकता है—

(१) स्यादस्ति (सम्भवतः है)।

(२) स्यान्नास्ति (सम्भवतः नहीं है)।

(३) स्यादस्ति च नास्ति च (सम्भवतः है कि नहीं भी है)।

(४) स्यादवक्तव्यम् (सम्भवतः नहीं कहने योग्य है)।

(५) स्यादस्ति च अवक्तव्यम् (सम्भतः होने पर भी अवक्तव्य)।

(६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यम् (सम्भवतः नहीं भी है और अवक्तव्य भी है)।

इनके अतिरिक्त जीव सृष्टि और प्रलय आदि के सम्वन्ध में इनका सिद्धान्त विलक्षण है जो अन्य सिद्धान्तों से पृथक् है। इनकी पौराणिक गाथायें भी विचित्र हैं। कहते हैं कि हिन्दुओं के अन्तर्गत प्रचलित अष्टादश पुराण जैन पुराणों के अनुकरण हैं। मूर्ति पूजा की प्रथा भी सर्वप्रथम इन्हीं लोगों में प्रचलित हुई। वर्तमान जैन समाज दार्शनिक विचारों से दूर हो केवल मन्दिर-निर्माण में पुण्य समझता है। महावीर स्वामी ने अपना समस्त जीवन प्राणिमात्र की सेवा में व्यतीत किया

तदीय मन्त्रफलदो मोक्ष मार्गो व्यवस्थितः ॥

सर्व सिद्धान्त संग्रहः ॥

था। लोक-कल्याण की कामना के लिए इन्होंने समस्त सुखों पर ठोकर मार दिया था। परन्तु आज उनके अनुयायी समस्त संसार के लिए लोक कल्याण की कामना ठुकरा कर केवल मन्दिर निर्माण में ही लगे हुए हैं।

महा वैयाकरण आचार्य पाणिनी—ईस्वी के ६०० वर्ष पूर्व तक्षशिला विश्वविद्यालय के एक स्नातक ने संस्कृत व्याकरण का निर्माण किया, जिसका नाम पाणिनि था। पाणिनी के निर्मित व्याकरण को पाणिनीय अष्टाध्यायी कहते हैं। उसके अन्तर्गत सूत्रपाठ, गणपाठ और धातुपाठ के नाम से तीन विभाग हैं। इसमें प्रायः ४ हजार सूत्रों द्वारा संस्कृत साहित्य के सूक्ष्म नियमों का विधान किया गया है। संसार के साहित्य में इतनी अच्छी व्याकरण की पुस्तक दुष्प्राप्य है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण ने ठीक ही लिखा है कि—

पाणिनी सदृश वैयाकरण संसार भर में कौन है।
इस प्रश्न का सर्वत्र उत्तर उत्तरोत्तर मौन है।

सर विलियम जोन्स का कहना है कि संसार की प्रमुख भाषाओं में यूनानी व्याकरण अधिक व्यवस्थित और पूर्ण है किन्तु यह बात स्वयं सिद्ध है कि संस्कृत का व्याकरण उससे भी अधिक पूर्ण और व्यवस्थित है। इसे व्याकरण, साहित्य दर्शन या निरुक्त (Philology) कह सकते हैं।

इस अष्टाध्यायी का प्रचार संस्कृत क्षेत्रों में अधिक रूप से है। यद्यपि इस व्याकरण के पूर्व बहुत सी व्याकरण की पुस्तकें थीं, जिनका उल्लेख स्वयं पाणिनी के सूत्रों में ही मिलता है। परन्तु वे सब अप्रसिद्ध हैं, उनके अध्ययन अध्यापन का प्रसार आज संस्कृतज्ञ-समाज में नहीं के बराबर है। इसका प्रमुख

कारण यह है कि व्याकरण वेद का अङ्ग है। इसकी तुलना व्याकरण के अङ्ग से की गई है। पाणिनीय व्याकरण के अध्यन करने से वेदार्थ का परिज्ञान होता है। किसी ने उपयुक्त ही कहा है कि—

यो वेद वेद वदनं सदनं हि सम्यक्,
ब्रह्मणा स वेदमपि वेद किमन्य शास्त्रम्।
यस्मादतः प्रथमेतदधीत्य धीमान्,
शास्त्रान्तरेषु भवति श्रवणाधिकारी॥

अष्टाध्यायी के ऊपर कात्यायन द्वारा रचित वार्तिक है। वार्तिक द्वारा पाणिनीय सूत्रों के न्यूनता की पूर्त्ति की गई है। योगसूत्र और वैद्यक के रचयिता महर्षि पतञ्जलि ने अपना विस्तृत महाभाष्य लिखा है, जिसे आज व्याकरण महाभाष्य कहते हैं। महाभाष्य की शैली सरल सुबोध है। इस ग्रन्थ द्वारा पाणिनी की गम्भीर बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। ऋषि ने प्रारम्भ में भूमिका लिखकर व्याकरण लिखने का प्रयोजन बतलाया है। कहते हैं कि जब आचार्य कात्यायन ने पाणिनीय सूत्रों की न्यूनता का प्रदर्शन किया तब ऋषि को अपना महाभाष्य ग्रन्थ लिखना पड़ा। जैसा कि भाष्यकार स्वयं लिखते हैं—'दर्भ पवित्र पाणिः प्राङ्मुखमुपविश्य आचार्यः सूत्राणि प्रणमति स्म न तत्र वर्णोयैकेन भाव्यमनर्थकं किमेतावता सूत्रेण' अर्थात् आचार्य पवित्र होकर ध्यान योग से सूत्रों का प्रणमन करते थे, वहाँ पर एक अक्षर भी अनर्थक नहीं हो सकता फिर सूत्रों की बात तो दूर रही। अतएव व्याकरण परम्परागत एक कहावत प्रसिद्ध है कि—"अर्धमात्रालाघवेन वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते"। ऋषि की वाक्यपटुता से

पाणिनीय व्याकरण की महत्ता अत्यधिक बढ़ गयी। पाणिनीय व्याकरण का प्रचार तथा प्रसार करने के उद्येश्य से आज सहस्त्रों निर्मिति पुस्तकें प्राप्त हैं। जिनमें काशिका, सिद्धान्त कौमुदी तथा अन्य अनेकों पुस्तकें हैं इन पुस्तकों के प्रणमन करने से मूलग्रन्थ सरल होने की अपेक्षा कठिन हो गया जिससे सर्वसाधारण को यह विश्वास हो गया कि संस्कृत व्याकरण कठिन होता है। मैक्समूलर साहब ने लिखा है कि संस्कृत का व्याकरण संसार के समस्त भाषाओं के व्याकरण से कठिन है। श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने इसी दुरूहता के कारण संस्कृत का अध्ययन ही त्याग दिया। यद्यपि लोगों का विश्वास है कि यह व्याकरण बहुत ही कठिन है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। हाँ, संस्कृत व्याकरण का अध्ययनाध्यायन-क्रम सर्व साधारण समाज में प्रचलित नहीं रहने से कुछ कठिनाई अवश्य मालूम पड़ती है। परन्तु इस व्याकरण के अध्ययन से साहित्य तथा दर्शन आदि का पूर्ण परिचय प्राप्त हो जाता है।

आज का पण्डित समाज मूल ग्रन्थ का परित्याग कर टीका ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी, लघु कौमुदी, शेखर और मनोरमा आदि जाल ग्रन्थों में अपना अमूल्य समय व्यतीत करता है। जिससे पर्याप्त समय भी लग जाता है और व्याकरण के मर्म का ज्ञान भी नहीं मिलता। विगत कई दशकों से आर्य समाज के प्रयत्नों से ऋषि प्रणीत उपयोगी ग्रन्थों का सुधार हो रहा है। गुरुकुल आदि आर्य समाज की संस्थाओं द्वारा मूल ग्रन्थों के अध्ययन पर ही विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। जिसके फलस्वरूप अल्प समय में ही प्रत्येक व्यक्ति व्याकरण के अपेक्षित ज्ञान का अधिकारी हो सकता है।

जिन ऋषियों ने अपने बौद्धिक भगीरथ प्रयत्न द्वारा इस

अमित ज्ञान की शिक्षा हम लोगों को दी, उनको जीवित रखना हमारा आवश्यक कर्तव्य होता है। यद्यपि यह बात सत्य है कि वैदेशिक आक्रमणों तथा आततायी मुसलमानों की नृशंसता से हमारी बहुत पुस्तकें भस्मसात् हो गयीं तथापि प्राप्त पुस्तकों से भी हम यथेष्टज्ञान का उपार्जन कर के संसार में अपना मस्तक ऊँचा कर सकते हैं। आज राष्ट्र की सांस्कृतिक विजय का यह शुभ लक्षण है कि परतन्त्रता की बेड़ियां ढीली पड़ गई हैं। युवक-समाज पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए हृदय में देश-भक्ति का ज्वालामुखी लेकर अस्तव्यस्त है। परमात्मा वह दिन शीघ्र ही लाये जब कि हम सर्वविध विजय में सफल हो सकें।

अर्थशास्त्र—तक्षशिला विश्वविद्यालय के एक सुयोग्य स्नातक होने के पश्चात् आचार्य चाणक्य ने सम्राट् चन्द्रगुप्त के यहाँ मन्त्री का उत्तरदायित्वपूर्ण पद स्वीकार करके विपुल यश का उपार्जन किया। इस त्यागी ब्राह्मण ने अपने बुद्धि-कौशल से भारत पर आक्रमण करने वाले सिकन्दर के सेनापति सैल्युकस को पराजित करके बन्दी बनाया था। जिससे पराजित सैल्युकस ने अपनी कन्या का विवाह चन्द्रगुप्त से करके मैत्री स्थापित की। चाणक्य की प्रतिभा सर्वतोमुखीन थी। उनका त्यागमय जीवन तथा आदर्श देशभक्ति अनुकरणीय है। कहते हैं कि चन्द्रगुप्त से अपनी कन्या का विवाह कर देने के पश्चात् सैल्युकस को सम्राट् के राज्य का प्रबन्ध, विस्तार तथा दुर्गमता को देखकर महामन्त्री चाणक्य के दर्शन की उत्कट लालसा हुई चाणक्य के वास स्थान की ओर जाने पर उसने देखा कि-गङ्गा के तट पर एक पर्ण कुटीर है, जिसमें आचार्य कुश की चटाई पर बैठे हुए हैं। सन्निकट में हवन की समिधाएँ तथा गोंइठा

फोड़ने के लिए पत्थर पड़े हुए हैं। सैल्यूकस को चाणक्य के इस सरल और असाधारण जीवन पर अभूतपूर्व आश्चर्य हुआ।

चन्द्रगुप्त के मन्त्रित्व ग्रहण करने की कथा भी विचित्र है। एक किंवदन्ती है जिस समय आचार्य तक्षशिला से विद्या समाप्त कर घर की ओर आ रहे थे कि मगध (पाटलिपुत्र) के पास उनके पैर में कुश पड़ गया। इस पर उनको इतना क्रोध आया कि वे कुश को उखाड़ कर उसका समूल विनाश करने के लिए नगर से मट्ठा लाकर उसकी जड़ में डाल रहे थे कि सर्वदा के लिए उनका सत्यानाश हो जाए। इसी घटना को चन्द्रगुप्त को भी देखने का अवसर मिला। चन्द्रगुप्त दासी पुत्र होने के कारण राज्याधिकार से पदच्युत था। उसने विचारा कि इस ब्राह्मण को यदि किसी प्रकार नन्दवंश के नाश के लिए लगा दिया जाए तो मुझे सहज में ही राज्य प्राप्त हो जाएगा। संयोगवश उसी समय राजानन्द के यहाँ यज्ञ का आयोजन हो रहा था। उसने अवसर देखकर स्वार्थसिद्धि के लिए नन्द की ओर से निमन्त्रण दे दिया। चाणक्य यज्ञ में जाकर ब्रह्मा के आसन पर बैठे हुए थे ही कि नन्द ने अपने भृत्यों से कुरूप होने के कारण उन्हें शिखा पकड़ कर उठवा दिया। उसी समय उस महापुरुष ने प्रतिज्ञा की, जब तक नन्द वंश का नाश नहीं करूँगा तब तक शिखा बाँध नहीं सकता। अन्त में विष कन्या का प्रयोग कर नाश ही कर दिया और चन्द्रगुप्त को राजगद्दी पर बैठाया। आचार्य्य द्वारा लिखित अर्थ-शास्त्र आज उपलब्ध हो गया है। मद्रास में उसकी हस्त लिखित प्रति प्राप्त हुई थी। उसके देखने से आचार्य्य की राज सम्बन्धी व्यवस्था का परिचय मिलता है। प्रायः सम्पूर्ण राजनैतिक बिषयों पर विचार किया गया है। युद्ध-विभाग, कर-विभाग, दूत-विभाग आदि का

विस्तृत उल्लेख किया गया है। शत्रु के मारने का गुप्त उपाय का भी वर्णन किया गया है। गुप्तचर (C. I. D.) विभाग नाना वेश अनेक भाषाओं के जानने की शिक्षा दी गयी। वेश बदलने की बहुत विधियाँ भी उसमें वर्णित हैं।

उस ग्रन्थ से भारतीयों के मस्तिष्क का पूरा परिचय मिलता है। ग्रन्थ में अन्य आचार्य्यों के मतों का भी उल्लेख है जो चाणक्य के पहले गुजर चुके हैं। इसमें संदेह नहीं कि चाणक्य भारतीय इतिहास के अनुपम व्यक्ति हैं जिनके जोड़ का पुरुष संसार के इतिहास में अप्राप्य है। जिसने निःस्पृह त्याग से राष्ट्र की सेवा की, हमारे राष्ट्रीय नेताओं को ऐसे त्यागी से शिक्षा लेनी चाहिये।

आयुर्वेद—आयुर्वेद का अर्थ होता है जिससे आयु का ज्ञान हो, आयु की प्राप्ति हो अथवा जिससे आयु स्थित रहे, उसे आयुर्वेद कहते हैं। यह अथर्व-वेद का उपवेद है। आयुर्वेद का आदि स्रोत अथर्ववेद है। अथर्ववेद में चिकित्सा की पद्धति लिखी है बहुत औषधियों का गुण भी वर्णित किया गया है। अथर्ववेद के नवम् काण्ड में मानव शरीर का वर्णन मिलता है। सूक्त के सूक्त रोग कीटाणुओं के नाश के उपाय में लिखे गये हैं। प्रचलित आयुर्वेद शास्त्र उसी से निःसृत है।

संक्षिप्त सिद्धान्तः—आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में तीन चीज वात, पित्त और कफ को मानकर चिकित्सा की जाती है। ऋषि कहते हैं कि प्रत्येक शरीर में ये तीनों वात, पित्त और कफ निवास करते हैं। येही जब दूषित आहार और विहार से दूषित हो जाते हैं तब बीमारी उत्पन्न होती है। रोग भी वातज पित्तज और कफज होते हैं। जैसी बीमारी होती है उसके शमन के लिये वैसीही औषधी दी जाती है, क्योंकि सम्पूर्ण औषधियों का

विवेचन इन्हीं तीनों के आधार पर किया गया है। शालिग्राम निघण्टु जो विशाल आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ है, उसमें सम्पूर्ण खनिज आदि के गुण वर्णित किये गये हैं, जिससे चिकित्सक सरलता से समझ सकता है कि अमुक वस्तु वातकारक और अमुक पित्तकारक है। इसका व्यवहार यहाँ उचित है या अनुचित, यह समझ में आ जाता है।

रसायन शास्त्र में इतने पारंगत थे कि आज मकरध्वज और सुवर्ण भस्म विश्व प्रसिद्ध हो रहा है। एक ही औषधि अनुपान भेद से अनेक रोगों में दी जाने वाली मकरध्वज ही है। इसी प्रकार सम्पूर्ण धातु एवं उपधातुओं का भस्मीकरण किया है। रसायन-शास्त्र के आद्य प्रवर्त्तक नागार्जुन कहे जाते हैं जो बौद्ध धर्म के महान् पण्डित थे। आयुर्वेद शास्त्र के धन्वतरि शल्य (Surgery) का भी वर्णन करते हैं। वाग्भट्ट में नाना साधनों का वर्णन मिलता है। आकृति, नाड़ी और जिह्वा से रोग पहचानने की विधियाँ बतायी गयी हैं।

मनुष्यों के अतिरिक्त पशुओं की भी चिकित्सा भारतीयों को विदित थीं। शालिहोत्र और हस्तिपक शास्त्र में घोड़ों को पहचानने की विधि उसके गुण और कार्य के साथ रोग निवारक औषधियों का भी वर्णन किया गया है। हस्तिपक शास्त्र में हाथियों का भेद बताया गया है जो बहुत हृदयग्राही और रोचक है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन ग्रन्थों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि वृक्ष, औषधी, लता आदि के भी रोगों की चिकित्सा की विधियाँ बतायीं गयीं हैं।

मौलाना सुलेमान नदवी ने 'अरब और भारत के सम्बन्ध' में लिखा है सबसे पहले अरब में चिकित्सा की पद्धति भारत से गयी है—चरक और सुश्रुत का अनुवाद अरबी भाषा में आज

भी मिलता है। हारूँ रशीद के समय भारत से स्त्री वैद्य जनानखाने की स्त्रियों की चिकित्सा के लिये गयीं थीं। नागार्जुन रसायन शास्त्र (Chemstry) के महान् वेत्ता थे। उनके ग्रन्थों का अनुवाद चीन, तिव्वत और लंका आदि देशों में विशेष रूप से किया गया है। आज भारत पराधीन है, एक हजार वर्षों से इसका सामाजिक राजनैतिक और धार्मिक जीवन बहुत ही कोलाहल पूर्ण रहा है। जिसके कारण नवीन आविष्कार के ग्रहण और परिहार की भावना घट गयी है। परीक्षण के अभाव के कारण आयुर्वेद का ह्रास होने लगा। अब इस ओर कुछ प्रगति हो रही है। निश्चय जब भारत पूर्ण स्वतन्त्र होगा और पुराने वैभव की ओर दृषिपात करेगा तो इसका भविष्य भूत से अधिक उज्ज्वल होगा।

अस्त्र और शस्त्र--

अग्रतश्चदुरो वेदान् पृष्ठतः सशरेधनुः।
इदं ब्राह्म मिदं क्षात्रं शापादोय शरादपि॥

भारत अस्त्र शस्त्र का भी गुरु रहा है। वेद रामायण और महाभारतादि ग्रन्थों में विविध अस्त्र-शस्त्र का विधान किया गया है। महाभारत में आग्नेयास्त्र का वर्णन मिलता है। वरुणास्त्र से पानी की वृष्टि अग्नेयास्त्र के उत्तर में कराने की विधि बतायी गयी है। शतघ्न, भुशुण्डि, तोमर, पट्टिश और गदा का वर्णन विभिन्न स्थलों पर मिलता था। छोड़े हुये वाणों को लौटा लेने की विधि मालूम थी। भगवान् कृष्ण सुदर्शन चक्र चलाते थे जो चारों ओर घुमता हुआ शत्रु पर आक्रमण करता था। देवताओं के अधिपति के पास वज्र था। जिसका आक्रमण कभी विचलित नहीं होता था। अर्जुन को संमोहन अस्त्र

का पता था। पारसियों की गाथा पुस्तक में शाहनामा में लिखा है कि * जिस समय सिकन्दर ने पर्सिया पर चढ़ाई की थी तब हिन्दुस्तान से पर्सिया को अस्त्र-शस्त्र भेजा गया था। मुहम्मद के आने के पहले अरबी में तलवार के लिए 'मुहनद' शब्द व्यवहृत होता था जिसका अर्थ होता है जो हिन्द से गया हो यह शब्द आज भी व्यवहार में है। शुक्रनीति में सोरा और गन्धक से गोला बनाने की विधि दी गयी है। कौटिल्य ने जहरीली गैसों द्वारा शत्रु को परास्त करने का उपाय बताया है। शत्रु के कूप, नदी, तालाब आदि को दूषित करने की विधि कौटिल्य शास्त्र में उपलब्ध है।

भारतीय युद्ध प्रेमी थे, वे युद्ध-क्षेत्र को पवित्र स्थान समझते थे। गीता युद्ध क्षेत्र में मरने वालों के लिये स्वर्ग बताती है। + लड़ाई से भागना पाप कहा गया है। क्षत्रियों का कर्त्तव्य ही युद्ध करना है। यही कारण है कि इस देश पर मुसलमानों ने बार २ आक्रमण किया तथापि उनको सफलता

---

* When Alexander invaded Persia, it is stated in the famous Persian epic Poem Firdausi's Shahnama that swords and other weapons were hurreed by sant for by the Persia from India.

The old Pre Islamic word fer sword is 'Muhnnad' which means from Hind or Indian. This word is in-Common used still.

Discovery of India.
by Pandit Jawahar Lal Nehru.

+ यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गं द्वारमपावृतम्।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।

सर्वांश नहीं मिली, हमेशा उनका समय हिन्दुओं से युद्ध करने में ही व्यतीत हो गया। दिल्ली के पास ही हिन्दुओं के स्वतन्त्र राज्य राजपूताना में थे।

हिन्दुओं के अवतारी पुरुष राम, कृष्ण, पर्शुराम शस्त्रधारी वेश में पूजे जाते हैं। परम्परागत आया हुआ विजयादशमी त्यौहार अस्त्र-शस्त्र के प्रदर्शन के लिये होता है। राजपूत जाति इस पर्व को बड़े उत्साह के साथ मनाती है। उस दिन मल्ल युद्ध, तलवार, लाठी, भाला आदि का प्रदर्शन किया जाता है। हिन्द देशी राज्यों में इस पर्व का बहुत बड़ा महत्व है। क्योंकि इसी दिन भगवान् राम विजय करने को निकले थे। हिन्दु जाति इसका स्मरण विजया-दशमी के अवसर पर करती है।

क्षत विक्षत होकर भी आगे बढ़ना यह क्षत्रियों का स्वभाव था। महामति टाड ने लिखा है कि उटाला गढ़ के किला को जीतने के लिये राजपूतों का दो वर्ग निकला। दोनों में इस बात की होड़ थी कौन पहले किले के भीतर पहुँचेगा। किले की रक्षा मुगल सिपाही कर रहे थे। एक दल सिंहद्वार पहुँचा, किन्तु द्वार बन्द था। सरदार ने सोचा कि हाथी के द्वारा इसे तोड़वा दें। पर द्वार में लोहे के बड़े बड़े कांटे थे, जिसके कारण हाथी तोड़ नहीं सका। सरदार हाथी से उतर गया। हमारे कार्यों में विलम्ब न हो जाय इसलिए किवाड़ में अपनी छाती लगाकर पिलवान से कहा कि मेरे पीठ में हाथी का मस्तक लगा कर तोड़वा दो। पिलवान ने वैसा ही किया। फाटक का किवाड़ तो टूट गया किन्तु उस सरदार के सम्पूर्ण अङ्ग लोहे के कांटों से क्षत-विक्षत हो गए थे जिससे कि तत्क्षण ही उसकी मृत्यु हो गई थी। एक दूसरा सरदार किले की दीवार से कुछ दूर

भीतर प्रवेश ही किया था कि गोली चली। वह सपूत तो मृत्यु की सुखद गोद में सो गया परन्तु मरने के समय अपने साथियों से कहा कि मेरा शरीर चादर में बाँध कर किसी प्रकार अन्दर ही फेंक दो। मरते समय वह अपने को अन्दर पाकर परम प्रसन्न हुआ और अन्तिम सांस ली। संसार के समस्त सजीव इतिहास में वीरता का ऐसा उज्ज्वल तथा उदात्त उदाहरण मिलना असम्भव है।

एक समय की बात है कि अकबर के दरबार में दो राजपूत घोड़े पर चढ़ कर आये और अकबर से निवेदन किया कि आप हमें नौकरी दीजिये। अकबर ने पूँछा कि आप लोगों में क्या विशेषता है? दोनों बहादुर अपने अपने घोड़े पर चढ़ गये और एक दूसरे ने परस्पर एक दूसरे की छाती में भाला का नोंक लगा कर घोड़े को ठीक किया। दोनों भाले से विद्ध होकर सर्वदा के लिये भूमि पर सो गए। उन वीरों ने बताया कि युद्ध में मर जाना पर पीछे नहीं हटना, यह हमारा स्वाभाविक धर्म है। यही कारण है कि आज एक हजार वर्ष से यह जाति निरन्तर वैदेशिक भावनाओं के प्रतिकूल संघर्ष कर रही है किन्तु अभी तक अपनी सभ्यता तथा संस्कृति पर आघात नहीं आने दिया। इसकी स्थिति, रीति, नीति, तथा अन्य सांस्कृतिक चित्र उसी प्रकार बने हुये हैं जिस प्रकार आज से कई सहस्र वर्ष पूर्व थे। शक, हूँण मंगोल तथा किरांत समाप्त हो गये। इस्लाम की तलवार ठण्ढी हो गई जो कि समस्त भारत की शिखा काट कर एवं जनेऊ तोड़कर मिंयाँ बनाने चली थी। वेद की पुस्तक जला कर कुरान, मन्दिर तोड़ कर मस्जिद फैलाने की इच्छा कब्र में दफना दी गई। 'हर-हर महादेव' के सामने 'अल्ला हो अकबर' को झुक जाना पड़ा।

हिन्दुत्व नहीं मिटा। हिन्दू संस्कृति नहीं मिटी। हिन्दू राज्य सुरक्षित रहे तथा हमारे वेद शास्त्र बच गये अपितु इस्लामी स्वयं भीषण विपत्ति में फँस गये। आज उनकी संस्कृति काल के कुटिल परिणाम से एक्का-टाँगा हाँक कर जीविका चला रही है। परन्तु हिन्दुओं का यह नारा आज भी कानों तक पहुँच रहा है

भगवा सब का बाना था, सब का एक निशाना था।
आगे को बढ़ जाना था, झण्डा हिन्दू राष्ट्र का ॥

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी जायतामाराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽति व्याधि महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनुः वोढा अनड्वान् आशुसप्तिः पुरन्धिर्ज्येष्ठा रथेष्ठो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्योऽभिवर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम योग क्षेमो नः कल्पताम।

चार्वाकमत—चार्वाक दर्शन का दूसरा नाम लोकायत दर्शन है। इसके प्रवर्त्तक आचार्य्य बृहस्पति कहे जाते हैं। आद्यगुरु शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र के भाष्य में इसकी चर्चा की है। रामायण और महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है। भगवान गौतम बुद्ध ने अपने शिष्यों को लोकायत दर्शन पढ़ने का निषेध किया है। यूनानी सुखवादी दार्शनिक एपीक्यूरस के पाँच ६ सौ बर्ष पूर्व भारत में इसका प्रचार हो गया था। इसका सिद्धान्त सर्वदर्शन संग्रह में मध्वाचार्य्य ने दिया है।

* अग्नि की उष्णता, जल की शीतलता, शीतस्पर्श वाला

* अग्नि रूष्णां जलं शीतं शीत स्पर्शस्तथानलः।
केनेदं चित्रितं तस्मात् स्वभावादस्य व्यवस्थितिः ॥

हवा किसने बनाई ? इनका निर्माण स्वभाव से ही हो गया।

*कार्य कारण की क्रिया निरन्तर जारी है। इसी द्वन्द्वात्मक विधि से सृष्टि का निर्माण हुआ है। मार्क्सवादी इसे वाद–(Thesis) प्रतिवाद (Antithesis) और सम्वाद (Synthesis) मान वैज्ञानिक रूप देकर समझाते हैं। चार्वाक के मतानुसार धर्म-अधर्म आत्मा आदि कोई नित्य वस्तु नहीं है. स्वर्ग-नरक की कल्पना बेकार है।[1] वर्णाश्रम की व्यवस्था ढोंग है, उनको क्रिया फल देने वाला नहीं। [2]अग्नि-होत्र, वेदत्रयी का कल्पना, यज्ञोपवीत में दण्ड धारण करना, शिर पर भस्म लपेटना ये सारी क्रिया बुद्धि और पुरुषार्थ तीनों की है, जिन्होंने अपनी जीविका के लिये इसकी कल्पना कर ली है। बृहस्पति आचार्य कहते हैं [3]मारा हुआ पशु जिसे ज्योतिष्टोम यज्ञ में हुत करते हो वह स्वर्ग को जाता है, तुम पुरोहित और यजमान ही क्यों नहीं हुत होकर स्वर्ग का सीधे टिकट लेते यदि [4]मरे हुये प्राणियों के पास तुम्हारा पिण्डा पहुंचता है तो यात्रा करने वाले लोगों को

---

* कार्य्य कारण कर्तृत्वे हेतुः प्रकृति रुच्यते। गीता।

१—न स्वर्गो नापवर्गो वा नेवात्मा पारलौकिकः, नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।

२—अग्नि होत्रं त्रयो वेदा स्त्रिदण्डं भस्मधारणम्, बुद्धि पौरुष हीनानां जीविकैति बृहस्पतिः।

३—पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति; स्वपिता यजमानेन तत्रकस्मान्नहिंसते।

४—मृतानामेव जन्तूनां श्राद्धश्चेत् तृप्ति कारणं गच्छतां हि जन्तूनां व्यर्थं पात्रेय कल्पनम्।

वट खर्चा देने की क्या आवश्यकता? *स्वर्ग में गये हुये लोगों की तृप्ति, यदि यहाँ पर दान देने से होती है तो महल पर बैठे ही लोगों के पास यहीं क्यों नहीं पहुँच जाता? ये सारी बातें व्यर्थ इसलिये मैं कहता हूँ † जब तक जियो कर्ज लेकर घी का पान करो, मरने के पश्चात् कौन किसको देता है, कौन किससे लेता है। 'यदि कहो कि पुनर्जन्म होता है, तब क्यों नहीं मरने के तत्क्षण शरीर में प्रविष्ट हो जाता है, क्यों कि बन्धु-बान्धव स्नेह उसे अवश्य सताता होगा। अरे असली बात यह है कि चारों वेदों के कर्ता भाण्ड धूर्त और निशाचर हैं. जर्फरी तुर्फरी आदि उनके ऋषि हैं। मुझको इस सिद्धान्त पर कोई टिप्पणी अथवा समालोचना नहीं लिखनी है, किसी सम्प्रदाय अथवा मत की निन्दा करना ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है। परन्तु यही बात कहनी है कि भारतीय दार्शनिकों ने जिस प्रकार इसे अनुपादेय माना है वैसा नहीं है। कई लोगों ने इसे प्रत्यक्षवादी कहकर इस शास्त्र की हँसी उड़ायी है। किन्तु चार्वाक का उद्देश्य यह नहीं था कि ज्ञान में अनुमान सहायक नहीं होता है वर्ना सारे प्रमाण प्रत्यक्ष मूलक हैं। अगर प्रत्यक्ष ठीक है तो सारे प्रमाण ठीक होंगे अन्यथा प्रत्येक्ष ही नहीं तो आगे का निर्णय व्यर्थ होगा। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण पर अधिक बल दिया गया। एक मूल भूत प्रकृति से ही सारे जड़ चेतनात्मक जगत् का विकास हो गया है। यह

---

*—स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयु स्तत्रदानतः, प्रसादभुयविष्टाना तत्रकस्मान्दीयते।

†—यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पीवेत् भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

आश्चर्य जनक कल्पना आचार्य्य के बुद्धि-गांभीर्य्य का द्योतक है। वैदिक-धर्म और वर्ण धर्म का खण्डन तथा तिरस्कार इन पण्डितों के अत्याचार के कारण किया गया:—जो जन्म से किसी को नीच और ऊँच माना करते थे। यज्ञ के नाम पर लाखों पशुओं की हत्यायें, इन पण्डितों की प्रतिक्रिया आवश्यक था अतः उदारचेता चारवाक ने इस प्रौढ़ दर्शन का निर्माण किया।

शर्मण्य देशोत्पन्न कार्लमार्क्सके सामने भी यही समस्या थी उसने देखा कि—आज करोड़ों आदमी अपनी बुद्धि बेंचकर, एक व्यक्ति विशेष ईसा और मुहम्मद के पीछे चल रहे हैं, परस्पर द्वेष और घृणा का कारण बन संसार की सभ्यता, संस्कृति और मानवी-कला को नष्ट करने में लगे हुये हैं, अतः इन इन धर्मान्धों का नाश करना चाहिये। अतः मार्क्स ने आवाज दी—धर्म की तिलांञ्जलि दो और इन धर्म के ठेकेदारों के पीछे मत चलो। मार्क्स का कहना है—जितनी बड़ी जन हानि बड़ी लड़ाईयों से नहीं हुई उतनी बड़ी जन हानि (हत्या) धर्म के नाम पर हुई है। धर्म के नाम पर वैज्ञानिकों की हत्या की गयी धर्म के नाम पर सत्य वादियों पर जुल्म ढाये गये अतः इस धर्म का नाश कर देना चाहिये। ठीक वही अवस्था चार्वाक के भी समक्ष थी अतः उस महापुरुष ने इस निकम्मे धर्म का खण्डन किया। सुन्दर बाजार वही है जहाँ पर सब चीजें मिलती हों, हिन्दू धर्म भी वैसा ही है यहाँ सारी चीजें मिलती हैं, अतः चार्वाक दर्शन के भी अनुयायी अवश्य होंगें और इसकी उपयोगिता समझते होंगें।

अष्टादशपुराण

हिन्दु धर्म ग्रन्थों में पुराणों की भी गणना है। ये गिनती में १८ हैं।* कहते हैं इनके कर्त्ता वेद व्यास हैं। किन्तु परीक्षण करने पर यह किंवदन्ती नितराम् असत्य ठहरती है। क्योंकि पुराणों का आपसी सम्बन्ध एक दूसरे से बहुत भिन्न है। सब अलग २ अपनी डफली बजाते हैं। कोई विधुको श्रेष्ठ बनाता है तो कोई शङ्कर के पिछे लट्ठ लेकर दौड़ता है। इस प्रकार अनूठा गाथा-ग्रन्थ हिन्दु जाति के पतन के लिये अवतीर्ण हुआ। जान पड़ता है कि इसके कर्त्ता ने सोचा होगा कि हमारे नाम पर यदि पुस्तक रहेगी तो कोई नहीं पूछेगा अतः वेदव्यास का नाम घुसेड़ दिया। इसकी रचना भी उस समय हुई जब कि वैदिक परम्परा विलुप्त हो गयी थी। वेद, दर्शन और उपनिषद् की चर्चा शान्तप्राय हो रही थी। भारत में नाना मत और अनेकों विचार सम्प्रदाय प्रचलित हो रहे थे। साहित्य में श्रव्य और दृश्य काव्यों की रचना जोरों से हो रही थी। धन-धान्य से पूर्ण भारत विलासिता की ओर अपना पदार्पण कर चुका था। भारत में अविद्या की रेखा चल पड़ी थी। उस समय पुराणकारों ने वैदिक उपाख्यानों को इधर उधर कर एक २ ग्रन्थ रच डाला। उदाहरणः—वेद में विष्णु शब्द सूर्य्य के लिये आया हैं, समुद्र आकाश और लक्ष्मी शब्द शोभा के अर्थ में आया है। पुराणकारों ने विधु का अर्थ परमेश्वर को क्षीर समुद्र में सुला दिया। वेद में आये हुये यौगिक शब्द-विश्वामित्र, वशिष्ट, कण्व आदि को देखकर लौकिक नाम विश्वामित्र आदि के साथ समन्वय कर पुराणों ने वेद को दूषित करने में पूरी चेष्टा की है।

---

* अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः।

पुराणों की भाषा सीधी और सरल होने कारण समझ में आने लगी। अतः कम पढ़े लिखे पण्डितों ने इसे अपना लिया। इसके द्वारा असंभव बातों का प्रचार धर्मान्ध रूढ़िगत व्यवहार का प्रचार विशेष पड़ा, फल क्या हुआ कि हिन्दु जमात में कुरीतियों ने अपना अड्डा जमा लिया। विद्या-तीर्थ छोड़कर हिन्दु काशी, प्रयाग और मथुरा में भ्रमण करने लगे। देश की विपत्ति दूर करने के बजाय लाखों कोस दूर चन्द्र और सूर्य्य में लगे ग्रहण को राहु-केतु द्वारा प्रयुक्त विपत्ति की चिन्ता में लाखों रुपया पानी में फेकने लगे। मृतक-श्राध, भूत-प्रेत की कल्पना आदि पुराणों की देन है। पुराणों का कहना है कि जन्म जन्मान्तर का पाप गङ्गा स्नान से दूर होता है तो भला यम, नियम का पालन कौन करे। सब गङ्गा स्नान के लिये हजारों मील दौरा करना आरंभ कर दिये। पुराणों ने यह भी प्रचार किया कि जन्म से ही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य होते हैं। वेद के उस मन्त्र को भूला दिया जिसमें कहा गया है:—तपस्या से ब्राह्मण होता है। अब ब्राह्मण बनना तो कोई कठिन नहीं, "हम इसलिये ब्राह्मण हैं क्योंकि हमारा जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है" दूसरा कोई ब्राह्मण नहीं बन सकता। परिणाम यह हुआ कि सात करोड़ अछूत हमसे अलग हो गये उनसे हमारा कोई भी सम्बन्ध नहीं रहा क्योंकि उनसे देह का स्पर्श भी हमने पाप समझा। पुराणों ने मनुष्य निर्मित मूर्ति की पूजा चलवायी। हिन्दू मानव को अनेक जातियों में विभक्त कर दिया। देश देशान्तर में भ्रमण करने वाली जाति का विचार कुंठित कर दिया। बताया कि—समुद्र-यात्रा पाप है। प्रत्येक मनुष्य में कुछ परोपकार की भावना अवश्य रहती है। जिसके द्वारा वह शुभ कर्म करना चाहता

है। दया, प्रेम, सहानुभूति आदि स्वजात गुण हैं जिससे मनुष्य किसी दूसरे की भलाई के लिये अपना पैर बढ़ाता है। पुराण कारों ने हिन्दु मानव के स्वजात गुण श्रोत को विद्यादान, अन्न-दान आदि से हटा कर पाषाण की पूजा की ओर लगा दिया। जिससे एक ओर भारत के असंख्य हिन्दू, विधर्मी बन रहे हैं किन्तु, पुराणवादी हिन्दू पाषाण को खिलाने में ही कृत कृत्य हो रहा है। निश्चय ही पुराणों से भारत का घोर पतन हुआ। यह बात सत्य है कि पुराणों की कुछ गाथायें और ऐतिहासिक कथायें भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक बातों के अन्वेषण में पर्य्याप्त सहायिका हैं परन्तु इनसे थोड़ा लाभ और हानि अधिक है। सत्य ही है जहाँ गुण रहते हैं वहां पर दोषों का समावेश भी अनिवार्य है। "गुणदोषमयं विश्वं स्रष्टा रचति कौतुकी" अर्थात् परमात्मा की सृष्टि में गुण और दोष दोनों हैं। अतः भारतीय उर्वरा मस्तिष्क में यह भी अनायास खरपात के समान उपज आया। किन्तु अब स्वर्ण युग आ गया है, वैदिक रश्मि की चमक आर्य्यों के प्राङ्गण में दिखाई पड़ रही है, सहस्रों वर्ष की अविद्या भाग रही है। अतः इस स्वर्ण युग में पुराणों का भी संशो-धन होगा, बीर हिन्दू जाति पुनः अपना पद प्राप्त करेगी जिससे यह संसार में अभिपूजित थी। आवो सब मिलकर वेद की शरण चलें जहाँ पर मानव-मानव में कोई भेद भाव नही है, सारे संसार को मित्र की दृष्टि से देखने की आज्ञा है। मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे...समीक्षन्ताम्—यजु०।

आचार्य्य शङ्कर

जन्म सम्वत् ८८९

संसार में कौन ऐसा दार्शनिक होगा जो आचार्य्य शङ्कर के कर्कश तर्क के समक्ष अपना शिर न झुकाता हो। जिस समय बौद्ध प्रभाव से वैदिक धर्म लुप्तप्राय हो रहा था, लोगों की श्रद्धाश्रुति प्रतिपादित सिद्धान्तों से हट रही थी। महान् राष्ट्र का विघटन हो रहा था क्योंकि वैदिक सूर्य्य के अस्ताचल चले जाने के कारण नाना सिद्धान्त और सम्प्रदाय अपना डेरा जमा रहे थे। भारतीय शासक के बौद्ध होने से वैदिक धर्म प्रचार को कोई सुभीता नहीं था। उस समय आचार्य शङ्कर का जन्म दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। जन्म के कुछ दिनों के बाद ही पिता की मृत्यु हो गयी। अब माता की सेवा का भार बालक शङ्कर के ही कन्धों पर पड़ गया, जीविका साधन केवल 'ब्राह्मण वृति' ही थी। अतः किसी प्रकार भिक्षा वृत्ति से वृद्धा माता का भरण-पोषण करने लगे। इधर उधर भ्रमण करते हुये आचार्य शङ्कर ने वैदिक धर्म की जो अधोगति देखी, इससे उनके हृदय में महती वेदना हुई। उन्होंने सोचा कि—मैं क्यों न सन्यास लेकर इस धर्म का उद्धार करूँ और वेदों का प्रचार घर घर में कर दूँ। किन्तु माता सम्मति आवश्यक थी अतः माता की अनुमति की चेष्टा करने लगे। गाँव से थोड़ी दूर भिक्षा वृत्ति के लिये गये बीच में एक छोटी सी नदी बहती थी, लोग पैदल ही उसको पार करते थे, आचार्य शङ्कर ने भी अपनी मां को पार पहुंचाया ज्योंही समान लाने के लिये उस पार गये किसी जलजन्तु ने उनका पैर पकड़ लिया और पकड़ कर भाग जाना चाहता था। त्योंही आचार्य शङ्कर ने अपनी मां को पुकारा। उस समय कोई भी उपस्थित

नहीं था जो सहायता करने के लिये दौड़ता। शङ्कर ने कहा माँ ! तुम यदि कहो कि मेरा बेटा जीवित बच जायेगा तो भगवान् का कार्य करेगा और सन्यासी बन कर संसार का कल्याण करेगा। संभवतः इससे मेरी जान बच जाय। माँ ने वैसा ही किया। कौन माता होगी जो अपने पुत्र को किसी भी रूप में जीवित देखना नहीं चाहेगी। दैवयोग से शङ्कर की जान बच गयी वह जल जन्तु उनका पैर छोड़कर भाग गया। घर आकर बालक शङ्कर अपने वस्त्रों को उतार एक लंगोटी धारण कर माता के समक्ष जाकर हाथ जोड़कर बोले—माँ, अब तुम पूर्व प्रतिज्ञानुसार आज्ञा दो जिससे मैं सन्यासी बन देश और जाति की सेवा करूँ। माता को आशा थी कि बालक शङ्कर का विवाह होगा, वधू घर में आयेगी मुझ वृद्धा की सेवा करेगी, हमारे कष्ट के दिन कट जायँगे और अन्तिम समय सुख पूर्वक बीतेगा किन्तु आज सारी आशाओं पर तुषारपात हो गया। वृद्ध माता स्तब्ध हो गयी। अब तो भगवान् के समक्ष प्रतिज्ञा कर चुकी थी। बेटा जावो, वर्ष दिन पर दर्शन देना, जब मैं मर जाऊँ तो मेरा अन्त्येष्टि संस्कार तुम ही आकर करना। बालक शङ्कर इस आज्ञा को मान कर सोलह वर्ष की अवस्था में साधु वेश में घर से निकल पड़े। उस समय गौड़ पद्माचार्य नाम के एक महान् विद्वान वैदिक धर्म में उपस्थित थे। आचार्य शङ्कर उन्हीं के आश्रम में जा, गौड़ पादाचार्य के शिष्य गोविन्द पादाचार्य से शिक्षा ग्रहण करना प्रारंभ किये। अद्वैत वेदान्त की शिक्षा शङ्कर को वही पर मिली। क्योंकि नित्य विज्ञान का सिद्धान्त गौड़ पादाचार्य के मस्तिस्क की उपज है। आचार्य गौड़ पादाचार्य की लिखी हुई माडूवेयोपनिषद् परकारिका जिस शङ्कर का भाष्य मौजूद है आज भी उनके उज्जवल यश का कीर्त्तन कर रहा है।

आचार्य शङ्कर ने वहीं विद्या समाप्त कर सन्यासाश्रम की दीक्षा ली। बौद्धों के त्रिपिटक के जवाब में प्रस्थान त्रयी की नींव डाली। ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखकर अद्वैत मत को पुष्ट किया। गीता और उपनिषद् पर भाष्य लिखकर अपने सिद्धान्त को वेदानुकूल प्रमाणित किया। शङ्कर की प्रकाण्ड विद्वत्ता से बौद्ध मत उच्छिन्न हो गया, जहाँ त्रिपिटक के पाठ होते थे वहाँ वेद की ऋचायें गायीं जाने लगीं। वैदिक योग का प्रचार हो गया, षोडश संस्कार पुनः चल पड़े। भारत वर्ष में नास्तिकों को परास्त कर शंकर स्वामी ने सोचा कि ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिससे बाहरी शत्रु इस देशपर अपना जाल न फैलाने पावे न कोई विदेशी सिद्धान्त यहाँ पनपे इसके लिये भारत के चार स्थानों में शङ्काचार्य्य की चार गद्दी स्थापित की गयीं।

आचार्य अधिक दिनों तक कार्य्य नहीं कर पाये तब तक दो जैन कपटी आस्तिक बन कर जहर का प्याला पिला दिया जिससे ३२ वर्ष की अवस्था में उनकी मृत्यु हो गयी। लेकिन ३२ वर्ष की अवस्था में जो कार्य उन्होंने वैदिक संस्कृति के लिये किया वह कोई जन्म जन्मान्तर में भी नहीं कर सकता है।

विशेषता यह है कि शंङ्कर स्वामी का सिद्धान्त मौलिक है, मूल ग्रन्थों के मधिकर्त्ता होने पर भी मत प्रतिपादन में विलक्षणता है। कुछ लोगों ने उनका विज्ञान सिद्धान्त देख कर उन्हे प्रछन्न बौद्ध तक कह डाला है। राहुल सांकृत्यायन का तो कहना है कि शङ्कर मत बौद्ध मत की नकल है। लेकिन विचार कसौटी पर शङ्कर सिद्धान्त मौलिक ठहरता है। क्योंकि शान्तिरक्षित ने विशालकाय ग्रन्थ तत्वसंग्रह नामक ग्रन्थ में अद्वैत सिद्धान्त औपनिषद सिद्धान्त का खण्डन किया है।

अद्वैत सिद्धान्त में जरा भी बौद्ध मत की झलक रहती तो

शान्तरक्षित के शिष्य कमल शील जिन्होंने तिब्बत में बौद्धधर्म का प्रचार किया—थोड़ा अवश्य अपनी टीका में दिग्दर्शन कराते। साथ ही साथ यह भी समझना चाहिये कि बौद्धमत में विज्ञान क्षणिक और अनेक है। शङ्कर मत में नित्य विज्ञान होता है। विज्ञान वाद में जगत् स्वप्नावभास किन्तु विमर्त सत् है। नागार्जुन का चतुष्कोटि विनिर्मुह शून्य सत् रूप नहीं है। परन्तु शङ्कर मत में ब्रह्म ही सद्रूप है।

मुझे यहाँ पर शङ्कर मत की आलोचना अभीष्ट नहीं है। किन्तु उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा करनी है। क्योंकि उस महापुरुष ने उस समय जैसा करना उचित था वैसा किया। नास्तिक मत उच्छेद किया और धर्म की रक्षा के लिये चार मठ स्थापित किये जो आज तक विद्यमान हैं लेकिन उन लोगों में वह भावना नहीं रही। आज के शङ्कराचार्य्य राजा और रईसों के जीवन व्यतीत करते हैं। कहते हैं आद्य गुरु शङ्कराचार्य्य के पथ को भ्रष्ट करने तथा उन्हे विपरीत पथानुगामी बनाने के लिये एक बार बौद्ध भिक्षुओं ने उनके मार्ग में हीरा जवाहिरात बिखेर दिये कि आचार्य्य लोभ बस उसे ग्रहण कर लेंगे किन्तु उस महापुरुष की दृष्टि में रत्न सीपी और घोंघा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं प्रतीत हुआ। आज उसी गद्दी के लिये मोकदमा बाजी हो रही है ये वेचारे धर्म का प्रचार क्या करेंगे? कबीर साहब ने ठीक ही कहा है:—

नारद कब बन्दूक चलावा,
व्यास देव कब वेन बजावा।
करहि लराई मति के भेदा,
इ अतीत की तरकस वेदा।

भये विरक्त लोभ मन नाना,
सोन पहिरि लजावे वाना।
घोरा घोरी कीन्ह बटोरा,
गाँव पाय जस चले करोरा।
सुन्दरि ना सहई सनकादि के साथ,
कबहु दाग लगावई करि होडी हाथ।

रामानुजाचार्य्य

कालक्रम के प्रभाव से शङ्कर वेदान्त से लोग ऊब गये थे। क्योंकि शंकर की युक्तियों के आगे नतमस्तक हो जाते थे। किन्तु हृदय में विश्वास नहीं होता था। साधारण जनता समझती थी कि हमें कुछ करने की क्या आवश्यता? सारा संसार मिथ्या है। एक ब्रह्म ही सत्य है। वेदान्तियों को अपनी सत्ता पर भी संदेह होने लगा। क्योंकि घटकाश और मठाकाश के सदृश एक ही विश्वात्मा प्रत्येक स्थान में उपस्थित है। रामानुजाचार्य को यह बात खटकी उन्होंने भी प्रस्थानत्रयी का भाष्य किया। उनका दार्शनिक सिद्धान्त विशिष्टाद्वैत कहलाता है। रामानुज के मत में पदार्थ तीन हैः—चित्, अचित् और ईश्वर। चित्‌आत्मा, अचित्–प्रकृति, ईश्वर–परमात्मा। रामानुज का अद्वैत से इतना प्रेम था कि ईश्वर को अभिन्न निमित्तोपादान कारण स्वीकार कर ही छोड़ा। तथापि रामानुज और शङ्कर में मौलिक भेद है। जो इन दोनों सिद्धान्तों को

पृथक् करता है। व्यवहारिक जगत् में शङ्कर भी भेद स्वीकार करते हैं, किन्तु परमार्थतः शङ्कर के सिद्धान्तानुसार एक ब्रह्म ही 'तत्व' है। ब्रह्म स्वजातीय और विजातीय स्वगत भेद से शून्य है, ब्रह्म निर्विशेष तथा निर्गुण है। रामानुजाचार्य्य के मत में चित् अचित् रूप शरीर विशिष्ट ब्रह्म सत्य है, उसके तथा उसके शरीर (जीव और जगत्) से भिन्न कुछ भी नहीं है। सजातीय और विजातीय शून्य होने पर भी स्वगत भेद से शून्य नहीं है। इत्यादि कुछ सैधान्तिक मतभेद है। इसके अतिरिक्त रामानुजाचार्य को सामाजिक मतभेद बहुत खटका। उन्होंने देखा कि कर्त्तव्य ज्ञान शून्य ब्राह्मण अपने को श्रेष्ठ मानते हैं और इतर वर्णों को नीच ठहराते हैं, अतः भक्ति मार्ग से पूर्व उन्होंने वैष्णव धर्म की नींव डाली। रामानुजाचार्य के ऊपर तामिल वेद का बहुत प्रभाव पड़ा था उसके सम्बन्ध में किंवदन्ती है कि—दक्षिण भारत में शठ कोयाचार्य नामक एक नीचकुलोत्पन्न था। उसका शिष्य यमुनाचार्य्य जो यवन था उसने ही तामिल वेद नाम की पुस्तक संहिता भाग वेद की मार्यादा कम करने के लिये लिखी थी। रामानुजाचार्य, यमुनाचार्य के ही शिष्य थे अतः उन्होंने तामिल वेद पर भी भाष्य लिखा। रामानुजाचार्य ने अपने भाष्य में संहिता भाग वेद का कुछ भी प्रमाण नहीं दिया है। लेकिन यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे वेदों को नहीं मानते थे।

विशेषता—रामानुजाचार्य के वैष्णव सम्प्रदाय से हिन्दु जाति में पुनः पुराना जोश आ गया। विधर्मियों को अपने भीतर मिलाने की प्रवृति पुनः जागरित हो गयी। धर्म के प्रचारकों की टोली भी निकली। जगत धर्म प्रचारार्थ मठ,

मन्दिर की स्थापना की गयी। उद्देश्य अच्छा था किन्तु मठधारियों ने उसे दूषित किया। अतः भिन्न २ दार्शनिक विचारों को लेकर माध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, वल्लभाचार्य आदि महापुरुष आये। इन लोगों ने वैदिक विचारधारा का तिरस्कार किया जिससे अवैदिक नाना मत प्रचलित हो गये। जो हिन्दु जाति सहस्र वर्षों से बुद्धि प्रखरता में प्रसिद्ध थी उसके आगे गुरुडम ने रोड़ा लगा दिया। भक्ति का इतना विकृत प्रचार हुआ कि गुरु का उच्छिष्ट खाना और उसके समक्ष आँख बन्द कर सारी चीजें स्त्री आदि को समर्पित कर देना यही धर्म हो गया। वे निकम्मे मठधारी महन्त व्यभिचार में रत रहने लगे। दक्षिण में देवदासी प्रथा चल पड़ी, जिसमें कुमारी स्त्रियाँ देवता के नाम पर मन्दिरों में पण्डों के लिये भोज्य बनी। वैष्णव, बौद्ध, पौराणिक, हम श्रेष्ठ हम श्रेष्ट कह कर आपस में लड़ने लगे। शिव के उपासक राम के विरुद्ध बोलते थे, तो कृष्ण के भक्त इन दोनों की निन्दा करते थे। महाभारत का कृष्ण माखन चोर और चोर जार शिखामणि बन गया। महायोगीश्वर कृष्ण को गोप-वधूटी-दुकूल-चोर कहा गया। व्यर्थ का वाद-विवाद प्रचलित हुआ। वेद की पढ़ाई ताक पर गयी। धर्म इसी में था कि हमारी पाठशाला में दूसरा कोई न आवे। विश्वधर्म रोटी में घिर गया। अनेक जातियाँ और उपजातियाँ बन गयीं, जो आज भी हिन्दू जाति को खोखला बना रही हैं। उसीका ही दूषित परिणाम है कि आज तक हिन्दू मानव की आँख नहीं खुली, वर्ना दिन प्रति दिन उसी गर्त में फँसती जा रही है। निष्कर्ष यह है कि प्रचलित मतवादों से हिन्दू जाति का कल्याण नहीं हुआ, अपितु हानि हुई। परस्पर वैमनस्य के कारण शत्रुओं को मौका

मिला और इस्लाम की खुँखारी तलवार भारत में आ गयी। सम्पूर्ण मूर्तियाँ तोड़ दी गयीं। मथुरा, काशी ध्वस्त की गयी। सोमनाथ का मन्दिर तोड़ दिया गया काशी के विश्वनाथ के स्थान पर मसजिद बनी। ये पण्डे इस्लाम के अत्याचार को रोकने में जरा भी समर्थ नहीं हुये। इतने दिन तक पत्थर की मूर्ति को खिलाया था, पिलाया था, सेज लगाया था किन्तु वह बेचारी एक मक्खी की टांग भी नहीं तोड़ सकी। तब भारतीय संतों ने अपने अमृतमय उपदेशों से भारत को विधर्मी होने से बचाया। यद्यपि ये संत वेदादि शास्त्रों से अनभिज्ञ थे तथापि उनके भीतर योग की विभूति थी, अन्तरात्मा में शक्ति थी, जिसने जनता को अपनी ओर आकृष्ट किया। इन संतों की कृपा से धर्म-वृषभ का टूटता हुआ चौथा पैर बच गया, स्वच्छन्दता से बेचारे पिच्छल जनपद में टिक गये और खुशी से पागुर किये। धर्म देव की दृढ़ता से हिन्दुत्व बच गया। मठ, मन्दिर, पाठशालायें बचीं, अतः इन महापुरुषों का उल्लेख यहाँ नितान्त आवश्यक है।

संत कबीर

कबीर साहब का जन्म काशी में हुआ। ये गली में फूल की डाली में रखे हुये पाये गये। नीरू जोलाहा ने इनका पालन-पोषण किया। इनको पुस्तकी ज्ञान नहीं मिला, ये नीरू के यहाँ ढर्की में सूत भरते थे। स्वामी रामानन्द से इनका परिचय हो गया। उनसे इन्होंने शिक्षा ग्रहण किया। इनके मन में जाति के बीच प्रचलित कुरीतियाँ खटकने लगीं। उन्होंने सोचा कि जब तक हिन्दू जाति के अन्दर मूर्ति पूजा, जाँत-पाँत छुआछूत आदि पाखण्ड रहेंगे तब तक इसका कल्याण असंभव है। ये मुसलमानों को हिन्दूधर्म में मिलाने की पूरी चेष्टा किये, अतः हिन्दुओं की बाहरी बुराई का खण्डन करते थे तथा मुसलमानों को चेताते थे, जिससे वे कट्टरता से दूर हों। उन्होंने 'बाना' का खण्डन किया। वे कहते हैं—* हमने दोनों को देखा है—हिन्दू और मुसलमान दोनों अपने हठ को नहीं छोड़ते हैं, सब को जिह्वा स्वाद मीठा लगता है, हिन्दू एकादशी ब्रत रहता है, परन्तु मांस का पारन करता है। मुसलमान बिस्मिल्लाह की आवाज लगाता है जिससे बहिश्त हो, किन्तु बहिश्त कैसे मिलेगा? रोज़ शाम को एक मुर्गी हलाल की जाती है। हमने हिन्दुओं की दया और तुर्कों की मेहरबानी देखी है। एक झटका पसन्द करता है तो दूसरा हलाल खोजता है। दोनों के घर में आग लगी है, एक परमात्मा के अतिरिक्त

---

* संतो राह दुनों हम दीठा,
हिन्दू तुरक हटा नहीं माने स्वाद सबन को मीठा।
हिन्दू वरत एकादशी साधे दुध सिंघाड़ा सेती—
अन को त्यागे मन को न हरके पारन करे सगौती। इत्यादि

दूसरा कोई मार्ग नहीं है। इस प्रकार हिन्दू धर्म के पावन सिद्धान्त अहिंसा का प्रचार करते थे।

‡ उन्होंने मुसलिम काजियों से एक प्रश्न पूछा है। काजी ! तुम यह कौन काम करते हो कि घर२ में जाकर भैंसा का जिबह कराते हो। उन बकरियों और मुर्गियों को किसने बनाया है ? पर पीड़ा समझते हो ? पीर तो कहलाते हो। व्यर्थ कलमा पढ़ २ कर दुनियाँ को ठग रहे हो। दिनभर रोजा, रात को गाय मारते हो, एक ओर खून दूसरी ओर बंदगी, भला खुदा कैसे खुश होगा ?

मांसाहारी पण्डा लोग जो तीर्थादि में बैठ कर नाना अत्याचार करते हैं उनके लिये संत कबीर कहते हैं कि:—* ये पण्डे कितने चतुर कसाई हैं। बकरा मार कर भैंसा की ओर दौड़ते हैं। ये स्नान कर तिलक लगाते हैं विधि पूर्वक देवी की पूजा करते हैं। किन्तु जीवों को मार कर खून की नदी बहाते हैं। उस पर अपने को उत्तम, कुलीन प्रभावित करते हैं। मुझको इस बात पर बहुत हँसी आती है। सब कुछ जानते हुये लोग उन्हीं से दीक्षा लेते हैं।

---

‡ काजी करम करावहु कैसा ?
पर घर जिबह करावहु भैसा।
बकरी मुरगी किन फरमाया, किनके हुकुम से छुरी चलाया। इत्यादि

* संतो पाड़े निपुन कसाई।
बकरा मार भैंसा पर धावें दिल में दरद न आई।
करि असनान तिलक दे बैठे विधि ते देव पुजाई।
आतम राम पलक में विनसै रुधिर की नदी बहाई।
अति पुनीत ऊँचा कुल कहिये सभा माहिं अधिकाई।
इनसे दीक्षा सब कोई लेवे हंसी आवत मोहिं भाई।

कबीर साहब जाँत पाँत को बुरी दृष्टि से देखते थे उनका कहना था कि कोई मनुष्य जन्म से बड़ा या छोटा नहीं है कर्त्तव्य ही श्रेष्ठ है, अतः कर्त्तव्य करो जातीयता के ढोंग को दूर करो। नया नया मत चलानेवालों की कबीर साहब ने खूब भर्त्सना की है। वे कहते हैं:—*एक ब्रह्म पंथ चलाता है। दूसरा गोपाल की गा रहा है। तीसरा शंभु मत चला रहा है। चौथा भूत और प्रेत के फेर में पड़ रहा है। इस प्रकार अनेकों मत प्रचलित हो रहे हैं। लेकिन मैं तो यही कहता हूँ कि—तन और मन को शुद्ध रखे। यही सच्ची भक्ति है।

इस प्रकार संत कबीर प्रचलित कुरीतियों का खण्डन कर भारत को स्वर्णभूमि बनाने की चिन्ता में थे। उनकी स्पष्ट-वादिता, सादगी और तपस्या को देख कर प्रचुर जनता आकृष्ट हुई। क्या हिन्दू क्या ‡ मुसलमान सब भक्त बन गये। कबीर की वाणी में जादू का असर था जिससे गोभक्षक मुसलमानों ने भी गले में कण्ठी डाल ली। कितने पूर्ण हिन्दू बन गये। कुछ समालोचकों ने कहा है कि कबीर साहब का प्रभाव अधः श्रेणी के हिन्दुओं पर ज्यादा पड़ा। किन्तु ऐसी समालोचना करने वाले मूर्खता की चरमसीमा पर पहुँच जाते हैं। क्योंकि संसार का कोई भी महापुरुष आता है। वह दलित और तिरस्कृत लोगों के उद्धार के लिये ही आता है। भगवान् बुद्ध भी जब आये तो उनका प्रथम शिष्य काशी का एक वणिक ही हुआ। ईसा भी दलित लोगों के उद्धार के लिये ही आये। आज महात्मा

---

*—एकसे ब्रह्म पंथ चलावा। एकसे हंस गोपालहि गावा॥
एकसे संभू पंथ चलावा। एक से भूत प्रेत मन लावा॥

‡—रामानन्दस्य शिष्या वै अयोध्यायामुपागतः इत्यादि
(भविष्य पुराण)

गांधी सारे संसार के पूजनीय हैं। लेकिन वे अपने को हरिजन कहते हैं। उनका सारा समय हरिजनों के उद्धार करने में ही व्यतीत होता है। संत कबीर का अवतार भी इसीलिये हुआ है। जिन्होंने अपने त्याग और तपस्या से उस समय हिन्दू जाति के बालकों को पथ भ्रष्ट होने से बचाया है।

गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म पंजाब प्रान्तर्गत एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनका विवाह संस्कार रूढ़ि परम्परा से बालकपन में हो गया। इनकी धर्म-पत्नी सती, साध्वी और मृदु स्वभाव की थीं, अतः वैबाहिक बन्धन उनकी उन्नति में किसी प्रकार का बाधक सिद्ध नहीं हुआ। इनकी शिक्षा काशी में हुई और वैराग्य का उदय भी यहीं हुआ। उसी समय जालिम मुगल साम्राज्य की नींव भी भारत में पड़ रही थी। ऐसी दशा में गुरु जी हिन्दू मुस्लमान एकता का उपदेश दे रहे थे। कबीर के समान ये भी मूर्ति पूजा, श्राद्ध, छुआछूत के कट्टर विरोधी थे। ये हिन्दू-मुस्लिम प्रेम के इच्छुक थे। इनका सम्प्रदाय 'सिक्ख' नाम से विख्यात आज पंजाब की रक्षा के लिए फौलादी दीवाल बना हुआ है। इसी के अन्तर्गत एक सम्प्रदाय 'उदासी' बतलाता है जो कि संसार से उदासीन रहता हुआ यौगिक विभूतियों से विश्व का कल्याण चाहता है।

गुरु नानक देब जी में प्रचार की भावना अधिक थी इस लिए उन्होंने भारत और भारत से बाहर मक्का मदीना आदि का भ्रमण किया। उसके पश्चात् गुरु अङ्गद देवजी द्वितीय

गुरु हुए, जो कि गुरु नानक देवजी के योग्य शिष्य थे। पुत्र होते हुए भी गुरु नानक देव जीने अपने शिष्य को ही इसके योग्य समझा। इससे सिद्ध होता है कि योग्यता के प्रति गुरु नानक देव जी में कितनी श्रद्धा थी। गुरु नानक देव जी ने सोचा कि जब तक छुआछूत का भूत रहेगा तब तक हिन्दू जातिं में एकता नहीं होगी। अतः सहभोज की प्रथा चलाई कि सब का भोजन एक साथ हो। यह एक प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दुस्थान के रोग का उचित निदान किया। वस्तुतः हिन्दू जाति के विघटन का यह भी एक महान् कारण था कि इसके अन्तर्गत ऊच-नीच की भावना पराकाष्ठा तक पहुंच गई थी। गुरु अङ्गद देवजीने भी इसे दूर करने का प्रयास किया। पंजाब में आपने अनेक स्थानों पर लङ्गर खोलवाया, जिसमें निःशुल्क भोजन मिलने लगा। इस प्रकार सिक्खों का प्रभाव पंजाब में बढ़ने लगा। ऋगवेद के 'संच्छध्वं संवदध्वं सेवो मनांसि जानताम्' (एक साथ चलो, एक साथ बोलो और तुम लोगों का मन एक सा हो) के अनुसार सिक्खों ने अपने संगठन का आदर्श रखा।

सिक्खों की उन्नति मुगलबादशाहों को खटकने लगी। जिसके फल स्वरूप गुरु अर्जुन देव जी बादशाह जहाँगीर के दरबार में लाए गए। जालिम बादशाह ने उनको तप्त बालू में भुनवा दिया। आठवें गुरु तेगबहादुर दिल्ली की चाँदनी चौक, जहाँ पर शीशगंज का गुरु द्वारा है, बुलाए गए। बादशाह औरंगजेब ने पंजाब की गद्दी का लोभ देकर मुसलमान बनने के लिए कहा। गुरु तेग बहादुर के अस्वीकार करने पर साथी दयाल सिंह तप्ततेल वाले कराह में डाल दिए गए, भाई मतिराम को आरा से चीर दिया गया और गुरु तेग बहादुर की गर्दन धड़ से

उड़ा दी गई किन्तु इन प्यारे वीरों ने अपने प्यारे कर्म को नहीं छोड़ा।

अब पंजाब में प्रतिक्रिया की आग धधक उठी और नव गुरु गोविन्द सिंह जीने अल्पावस्था में ही गुरु की गद्दी को सुशोभित किया। केश, कच्छ, कड़ा, कृपाण और कंघी पंच ककार सिक्खों के जीवन का अनिवार्य आभूषण हो गया। गुरु ने कहा 'एक से मैं लाख लड़ाऊँ, तब गोविन्द सिंह नाम कहाऊँ' इसका पालन सिक्खों ने अक्षरशः करके दिखा दिया। इन सिक्ख वीरों ने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए संघर्ष किया, प्राण दिया और धर्म की रक्षा की। औरंगजेब की नीति मिट्टी में मिल गई जो कि 'अल्ला हो अकबर' का नारा लगाकर हिन्दुत्व को मिटाना चाहता था। 'बोलो सो निहाल सत्य श्री अकाल' ने अल्ला हो अकबर को पटक दिया। हिन्दुत्व की विजय वैजयन्ती उड़ने लगी। सिक्खों की वाणी में ओज था और उनमें त्याग-तपस्या थी। सिक्ख जाति ने मरना सीखा था। इनकी धार्मिक पुस्तक गुरु ग्रन्थ साहब विद्वत्ता की दृष्टि से इतना ऊँचा नहीं परन्तु सरल भाषा में कुछ उपदेशमय वाक्य इतने चुभने वाले हैं कि साधारण जनता उधर विशेष आकृष्ट हो जाती है। वस्तुतः जनता केवल ओछी बातों को सुनना पसन्द नहीं करती, उसे तो सच्ची सच्ची बातें सीधी सरल भाषा में चाहिए। गुरुओं ने ऐसी ही बातों को सुनाया, जिसके कारण पंजाब प्रान्त में हिन्दुत्व की प्रखर भावना सजीव और सबल हो उठी। कुछ ही दिनों में लाखों सैनिक तैयार हो गए जिन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है।

सिक्ख वीरों की कृतियाँ सुवर्णाक्षरों में लिखी हुई हैं और आगे आने वाली सन्तति उन महावीरों को स्मरण कर जीवित

रहेंगी। वे वीर धर्म की रक्षा के लिए दिवालों में चुन गए, सिकचों से अपना माँस उभड़वा दिया लेकिन अपनी प्यारी संस्कृति उन लोगों ने नहीं छोड़ी। निश्चय जो जाति मरना नहीं जानती है उसे जीना रहना भी कठिन हो जाता है। किसी भी सिद्धान्त को ताजमहल के समान दिखाने से काम नहीं चलता अपितु उसे जीवन में उतारने से होता है। सिक्ख गुरुओं ने उसे अपने जीवन में उतारा था तभी तो आज सिक्ख जाति जीवित हैं। तथा आगे भी जीवित रहेगी चूँकि उनके भीतर सांस्कृतिक भावना जागृत है। हमारे नेताओं को इससे शिक्षा लेनी चाहिए जो कि रोटी के प्रश्न को उठाकर हिन्दू संस्कृति के विनाश में लगे हुए हैं। आज कोई हिन्दुस्तानी के नाम पर उर्दू का प्रचार करता है तो कोई शिखा-सूत्र तोड़ने में ही राष्ट्रीयता समझ रहा हैं। यह समझ लेना चाहिए कि कोई जाति केवल रोटी के लिए ही बलिदान नहीं करती अपितु संस्कृति के लिए करती है। क्या अंग्रेजों द्वारा रोटी का प्रबन्ध कर देने पर हम स्वतन्त्रता का संघर्ष स्थगित कर देंगे? यह कभी नहीं हो सकता। एक भारतीय संत ने सत्य ही कहा है—सुराज्य से स्वराज्य बहुत अच्छा है।

दुख विनशे संशय गया, शरण नहीं हरि राय।
मन चिन्दे फल पाईया, नानक हरिगुण गाय॥

स्वामी समर्थ रामदासजी

प्रत्येक देश में समयानुसार संत होते आए हैं । ईसा मुहम्मद, टाल्सटाय और लेनिन आदि इसके उदाहरण स्वरूप हैं। भारत वर्ष भी महापुरुषों का देश है जहाँ पर अनेकों महापुरुषों ने जन्म धारण किया है। स्वामी समर्थ राम दास जी उन्हीं महापुरुषों में से एक थे। आप का जन्म दक्षिण भारत के ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये अल्प अवस्था में ही विरक्त होकर घर से निकल पड़े। जब इन्होंने अपने देश की यह दुर्दशा देखी कि यह पवित्र भारत भूमि आज यवनों द्वारा आक्रान्त हो रही है, स्थान स्थान पर गायों की हत्या की जा रही है, वेद की पाठशाला बन्द हो रही है और फारसी की पढ़ाई प्रारम्भ है और हिन्दुत्व के विनाश के लिए षड़यन्त्र किया जा रहा है तो इन्होंने इसे दूर करने का निश्चय किया। सौभाग्य से शिवा जी जो पश्चात 'छत्रपति शिवा जी के नाम से विख्यात हुए-शिष्य मिले। शिवा जी भोंसला बंश के नररत्न थे, जिनका सम्बन्ध पहले उदयपुर से था। स्वामी रामदासजीने एक साधारण परिवार में उत्पन्न होने पर भी शिवाजीके अन्तर्गत अतुल प्रतिभा देखकर भारत की कल्याण-कामना से शिक्षा देना आरम्भ किया।

स्वामी रामदास जीकी लिखित पुस्तक 'दास बोध' नाम से आज भी विख्यात है। उसमें साधारण बातों से लेकर आध्यात्म की ऊँची से ऊँची बातें सरल भाषा में समझाई गई हैं। जिसका प्रभाव मरहट्टा जाति तथा उसके योग्य सुपुत्र शिवाजी पर भी पड़ा। वस्तुतः कणाद के शब्दों में धर्म उसी को कहते हैं जिसके द्वारा इस लोक में उन्नति तथा परलोक में सुख मिले। आज

हमारे देश के साधु-सन्यासी यही उपदेश देते फिरते हैं कि यह संसार असार है। यहीं पर भोजन करते, कपड़ा पहनते, चलते-फिरते और सब कार्य करते हैं किन्तु इसी को असार कह कर इसी का तिरस्कार करवाते हैं। इसका परिणाम हिन्दू-जाति के लिए बहुत बड़ा घातक सिद्ध हुआ। सम्पूर्ण हिन्दूजाति धन-धान्य से सम्पन्न होती हुई भी कुछ साधारण से यवन-सैनिकों द्वारा अक्रान्त हो गई। इसका कारण था कि हिन्दुओं में एकता और अनुशासन का अभाव था, जिसके कारण उनका पराभव हुआ। जिन लोगों का यह कहना है कि हिन्दुस्तान एक राष्ट्र नहीं है क्योंकि यहाँ पर अनेक भाषायें और अनेक संस्कृतियाँ हैं—यह महादेश अनेक संस्कृतियों का समूह है—इस कथन में सत्यता लेशमात्र भी नहीं है। अटक से लेकर कटक तक और काश्मीर से लेकर कन्या कुमारी तक प्रत्येक आबाल-वृद्ध हिन्दू यह विश्वास करता है कि यह हमारी पुण्य भूमि है, यहाँ के महापुरुष हमारे हैं। राम-कृष्ण जिस प्रकार युक्तप्रान्त के लिए पूज्य हैं उसी प्रकार बंगाल और मद्रास के लिए भी कम पूज्य नहीं। महाराणा प्रताप की वीरता पर जिस प्रकार राजपूताना का एक हिन्दू अभिमान करता है तो उसी प्रकार एक बंगाली कम गर्वोन्मुख नहीं होता है। यहाँ के प्रत्येक हिन्दु के हृदय में भारत के प्रत्येक क्षेत्र के लिए प्रेम और भक्ति है। धार्मिक पुराने विचार का हिन्दू जहाँ स्नान करने कुएँ पर जाता है वहाँ—'गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति, नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु' यह श्लोक बार बार पढ़ता है। इस श्लोक में मानों समस्त देश लिपटा हुआ है। ऐसे ही एक और महत्त्वपूर्ण श्लोक मिलता है जिसमें देश को सात कुल पर्वतों का देश कहा गया है—महेन्द्रोमलयः संध्यः शुक्ति मानस पर्वतः

विन्ध्यश्च पारिपत्रश्च सप्तैते कुल पर्वताः" एक अन्य श्लोक में भारत के सर्व तीर्थों का वर्णन है—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी द्वारवती चैव सप्तैवा मोक्ष-दायकाः ॥ सौ राष्ट्रे सोमनाथश्च श्री शैले मल्लिकार्जनम्, उज्ज-यिन्यां महाकालम् ओङ्कार मनरेश्वरे । केदारं हिमत्पृष्टे गकिन्यां भीमशङ्करम् , बाराणस्वाञ्च विशेशं त्र्यम्बक गौतमतटेन वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं द्वारिकावने, सेतु बन्धे च रामेशं सुमेराश्च शिवा-लेयम ऐतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं परोकार प्रातः तथोत्तरम् सप्त जन्म कृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥

इन श्लोकों से सहसा मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि स्थान-स्थान पर तीर्थ मन्दिर आदि स्थापित कर भारतीय वीर इसकी एकता चाहते थे । देश-प्रेम और राष्ट्रीयता का प्राचीन प्रमाण विष्णु पुराण का सुनिए—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे ।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते
भवन्तिभूमः पुरुषाः सुरत्वात् ॥
कर्माण्यसङ्कलिपत तत्फलानि
संन्यस्य विश्वमे परमात्मभूते ।
अवाप्य तत्कर्म महीयमन्ते,
तस्मिल्लयं मे त्वमसाः प्रयान्ति ॥
जानीन नैतत् क्वयं विलीने,
स्वर्गप्रदे कर्मणि देहवन्धम् ।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्याः
ये भारते नेन्द्रिय विप्रहीनाः ॥

एक भोजन की विधि और एक वेशभूषा सर्वत्र देश में प्रचलित है। पुरुषों की धोती और स्त्रियों की साड़ी देखकर समस्त देशों की उपेक्षा एक विलक्षणता ही ज्ञात होती है। धोती, कुर्ता और शिर पर गान्धी टोपी देखकर एक अपरिचित व्यक्ति भी सरल में ही जान सकता है कि यह हिन्दू है। इस प्रकार भारतवर्ष में अटक से लेकर कटक तक और काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक सांस्कृतिक धारा प्रवाहित है, परन्तु आज कुछ नासमझ देश-द्रोही भारतमाता का अङ्ग-विच्छेद करने के लिए प्रस्तुत हैं। भारतमाता के अङ्ग-विच्छेद को ही हिन्दू-मुसलमान एकता का हेतु समझते हैं, यह उनकी भूल है। खण्ड-खण्ड भारत को बाँटने से मेल-मिलाप नहीं होगा अपितु सर्वदा के लिए एक महारोग उत्पन्न हो जाएगा जिसका उच्छेद करना हिन्दू भारत का कर्त्तव्य होगा। आज मुस्लिम लीगी नेता गृह-युद्ध की धमकी देकर पाकिस्तान प्राप्ति का स्वप्न देख रहे हैं, परन्तु उनको मालूम होना चाहिए कि जिनके शरीर में बहाने के लिए पसीना भी नहीं है। अपने चलने-फिरने के लिए रक्त भी नहीं है वे मैदान में रक्त बहाने कहाँ से आयेंगे। अस्तु, यदि गृह-युद्ध का सूत्रपात हो ही जाता है और १, २ लाख हिन्दू यदि मर भी जायें और स्वतन्त्रता का सौदा पट जाए तो सस्ता ही है।

समर्थ स्वामी रामदास जी इस विकट समस्या को समझते थे। अतः उन्होंने हिन्दूराज्य की भावना शिवाजी में भर दी. जिसके परिणामस्वरूव मरहट्टों ने स्मरण किया—इक्ष्वाकुलमियं भूमिः सशैल वनकानना, मृग पक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ अर्थात् यह भूमि भगवान् राम के वंशजों की है। पर्वत, बन, पशु, पक्षी और मनुष्य उन्हीं के निग्रह

और अनुग्रह में रह सकते हैं। इसी का स्मरण कर मरहटों ने हिन्दूराज्य स्थापित करने की चेष्टा की और वे सफल भी हुए। औरंजेब जिस शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहता था और अपने को शेर कहने में गौरव का अनुभव करता था परन्तु उस पहाड़ी चूहे ने शेर की दाढ़ी नष्ट कर दी। विपक्षियों के समस्त प्रयत्न विफल और सारहीन सिद्ध हुए जो अल्ला हो अकबर कहकर चिल्लाते थे और कहते थे कि हमारी सहायता करने फरिश्ते आते हैं, वे मैदान छोड़ कर भाग गए। हरहर महादेव ने अल्ला हो अकबर को पटक दिया। हरिभक्तों की जीत हुई। मन्दिर तोड़नेवाले परास्त हो गए। दूसरे आलमगीर के समय में मरहट्टों ने दिल्ली में झण्डा गाड़ दिए। बादशाह मरहट्टों के हाथ की कठपुतली हो गया।

प्रस्तुत घटनाओं के मूल में प्रत्येक स्थान पर रामदास स्वामी का उपदेश था कि—देवताओं को पूज्य मानकर उनको शिरपर धारण करो, चारों ओर धर्म का डंका बजा दो और प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्थापना के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देना चाहिए। धर्म के लिए मरो और मरते हुए भी शत्रुओं का संहार करो। राज्यप्राप्ति के लिए मर मिटो। मरहट्टों को संगठित करके राष्ट्रधर्म को बढ़ाओ। अपने इस कर्त्तव्य से च्युत होने पर पूर्वजों के परिहास-पात्र बनोगे। इन्हीं सब वीरता के उदात्त भावनाओं ने शिवाजी को वीर पुरुष बनाया। भूषण ने सत्य ही लिखा है कि—

कासीहूँकी कला जाती मथुरा मसीद होती,
शिवा जी न होते तो सुन्नत होती सबकी।
राखी हिन्दवानी हिन्दवान को तिलक राख्यो,
स्मृति और पुराण राखे वेद-विधि सुनी में।

राखी राजपूती राजधानी राखी राज की,
धरा में धरम राख्यो, राख्यो गुन गुनी में।
भूषण सुकवि जीति हद मरहट्ठन की,
देश देश कीरति बखानी तब सुनी में।
साहि के सपूत सिवराज समशेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखि दुनी में ॥

यद्यपि भूषण कवि महाराष्ट्रीय नहीं थे तथापि महाराष्ट्र के अन्तर्गत उत्पन्न वीरशिवाजी जी में हिन्दूराष्ट्र की भावना से प्रभावित होकर उन्होंने शिवाबावनी नामक वीररस-पूरित पुस्तक का प्रणयन किया है।

आज भी महाराष्ट्र में हिन्दुत्व की अन्य भावना का जो अविरल स्रोत प्रवाहित हो रहा है उसमें रामदास जी का उपदेश काम कर रहा है। हिन्दू राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसका उज्ज्वल दृष्टान्त है। इस संस्था के संस्थापक श्री हैडगेवन एक महापुरुष थे जिन्होंने हिन्दुत्व की रक्षा के लिए संघ का सूत्रपात किया था, आज इसका सबल संघटन भारतवर्ष के हिन्दुओं में होता जा रहा है।

ब्रह्म समाज—यहाँ पर एक ऐसी ही संस्था का उल्लेख करना नितान्त आवश्यक है, जिसने भारतीय इतिहास में घोर परिवर्त्तन किया और विनाशोन्मुख हिन्दूजाति को बचा लिया। जात-पाँत, सती प्रथा तथा मूर्ति पूजा आदि में फँसी हुई हिन्दू-जाति को उबारने वाला बङ्गाल का ब्रह्मसमाज है। ब्रह्म समाज के प्रवर्त्तक महात्मा राजाराम मोहनराय थे। आपका जन्म बंगालप्रान्त के हुगली जिले के राधानगर में १७७४ ई० को हुआ था। इनकी परम्परागत उपाधि बन्द्योपाध्याय थी, किन्तु

मुर्शिदाबाद के नवाब के यहाँ से प्रपितामह को राय की उपाधि मिली थी, तब से इस परिवार के लोग राय कहे जाने लगे। राजाराम मोहनराय का परिवार वैष्णव था किन्तु उनकी माता शाक्त सम्प्रदाय के घर से आई थी। वे बहुत सीधी सादी और मृदु स्वभाव की थीं। माता का प्रभाव बालकों पर पड़ता ही है। राजाराम मोहनराय पर माता की सरलता और सत्य-निष्ठा का प्रभाव पड़ा। राजा राम मोहन राय बालपन से ही बड़े प्रतिभाशाली थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पटना में हुई जहाँ पर कि आप अरबी और फारसी पढ़ते थे तत्पश्चात् आपने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की। आपने काशी में संस्कृत का अध्ययन भी किया। अनेक शास्त्रों के अवलोकन से इनकी बुद्धि को विकसित होने का अच्छा अवसर प्राप्त हुआ।

अध्ययन काल समाप्त करने के पश्चात् राजा जी ने विचारा कि प्रतिमा पूजन की प्रचलित प्रथा अशास्त्रीय है। यह विचार कर उसके खण्डन में आपने एक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक से कट्टर पन्थियों में बड़ा कोलाहल हुआ। स्वयं आपके पिता बहुत अप्रसन्न हुए और उन्होंने घर से निकल जाने को कहा। वे सप्रसन्न घर से निकल गए और हिमालय की ओर चले गए। तीन वर्ष तक तिब्बत में रहकर आपने बौद्ध साहित्य का अनुसन्धान किया। इधर उस महापुरुष के वियोग से माता-पिता की चिन्ता एवं दशा दिन-प्रतिदिन बढ़ ही रही थी। पिता ने राजाजी को ढूढ़ने के लिए आदमी भेजा। अन्त में तीन वर्षों के पश्चात् उस आदमी के साथ राजाराम मोहन राय घर आए। घर के लोगों ने उनका स्वागत किया। घर पर रहकर इन्होंने हिन्दूदर्शन शास्त्रों का अध्ययन प्रारम्भ किया। दिन भर उस अलौकिक पुरुष का समय शास्त्र-चिन्तन

में ही व्यतीत होता था। गम्भीर चिन्तन के पश्चात् उनकी दृष्टि उस काल के ईसाई समाज पर पड़ी जो कि हिन्दू धर्मपर आक्षेप किया करता था। श्रीरामपुर से ईसाइयों का समाचार चन्द्रिका नामक एक समाचार पत्र निकलता था। सन् १८२१ ई० के जुलाई मास की पत्रिका में समस्त हिन्दूधर्म के विरुद्ध एक लेख प्रकाशित हुआ। भला राजाजी ऐसा वरपुङ्गव इस अपमान का सहन कैसे कर सकता था! उन्होंने शीघ्र उसका उत्तर लिखकर प्रकाशनार्थ भेजा। सम्पादक अपनी पोल खुलवाने के लिए उसे कैसे छाप सकते थे। लेख प्रकाशित नहीं हो सका। अतः राजाराम मोहनराय को ब्राह्मण रोवधि नाम की पत्रिका निकालनी पड़ी। जिस परिश्रम और उत्साह से राममोहन राय ने इस पत्रिका को निकाला उससे उनका हिन्दु जाति के प्रति महान् अनुराग और ऋषि एवं शास्त्रों की ओर प्रचुर श्रद्धा विदित होती है। आप इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए परन्तु आपने ग्रीक भाषा में पुरानी वाईबिल की पोथी पढ़ी। एक यहूदी से हिब्रू पढ़कर सम्पूर्ण वाईबिल का मर्म समझा। रामदास आदि नामों से ईसाइयों के गंदे लेखों का उत्तर लिखा और पत्रों में छपवाया। इसी समय विलियन एडम नामक एक अंग्रेज मिश्नरी से आपकी मित्रता हो गयी और वह पादरी आपसे निरन्तर बातचीत करके ईसाई धर्म में दीक्षित करने का प्रयत्न करने लगा। किन्तु पादरी के परिश्रम का फल आशानुकूल नहीं मिल सका, फल प्रतिकूल ही निकला। राजाजी स्वयं ईसाई तो नहीं हुए किन्तु एडम साहब राजाजी के अनुयायी हो गए। यह समाचार सुनते ही ईसाई संसार में बड़ी हलचल उत्पन्न हो गई। कुछ दिन कागजी शास्त्रार्थ चलता रहा परन्तु अन्त में पादरी लोग शास्त्रार्थ के मैदान को

छोड़ कर भाग गए। पादरी राजाजी के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके। क्योंकि राममोहनराय बाईविल के पूर्ण मर्मज्ञ होने के कारण उसी में विरोध दिखलाते थे। उन्होंने पादरी और शिष्य संवाद नाम की छोटी पुस्तक लिखी, जिसमें योग्य लेखक ने यह सिद्ध किया था कि ईसाइयों का यह सिद्धान्त कि ईश्वर तीन है—नितान्त अयुक्त और असंगत है। इसी प्रकार एक दूसरे लेख में आपने लिखा था कि सिद्ध करो कि ईसा ईश्वर पुत्र था, जब कि उन्होंने प्रत्येक स्थान पर अपने को मनुष्य पुत्र कहा है। क्या वे अपने को छिपाते थे। तब तो क्यों नहीं उनपर मिथ्यावादिता का दोष लगाया जाय।

राजा जी की युक्तियों ने विरोधी कुतर्कों को नष्ट कर दिया और जिसके फलस्वरूप उस विपत्ति काल में हिन्दू अपने शिक्षा-सूत्र की रक्षा कर सके। राजाराम ने शास्त्र प्रचार का स्तुत्य प्रयास किया है। उपनिषदों का अनुवाद देशभाषा में किया और वेदान्त दर्शन की टीका अंग्रेजी तथा बंगला में लिखी। वे जन्मगत जात-पाँत को नहीं मानते थे। आपने इसके विरुद्ध में प्रचार किया जिस पर पण्डित समाज बहुत क्रुद्ध हुआ, किन्तु राजा जी ने इसकी चिन्ता नहीं की। एक एक पण्डित को शास्त्रार्थ में पराजित किया। अब संघटित रूप में काम करने की आवश्यकता थी। अतः १८१५ ई० में राजा राममोहनराय ने मानिक तल्ला में अपने ही भवन पर भारतीय सभा नामी एक सभा स्थापित की। उस सभा का अधिवेशन प्रति सप्ताह एक बार होता था। इसमें वेदपाठ के अतिरिक्त ब्रह्मसंगीत द्वारा ब्रह्मोपासना की जाती थी। राम मोहनराय के अनेक अनुयायियों ने इस समय उनका साथ छोड़ दिया क्योंकि सामाजिक विरोध

करने के लिए उनमें आत्म-बल नहीं था। इस सभा के सम्बन्ध में विचित्र किंवदन्तियाँ उड़ने लगीं। लोगों ने यहाँ तक कहना प्रारम्भ कर दिया कि आत्मीय सभा में गोवत्स हत्या भी की जाती है परन्तु मोहनराय इन अपवादों से डरने वाले नहीं थे। वे अपने उद्देश्य साधन में निरन्तर लगे रहे। १८१६ ई० में एक महासभा राजाजी को पराजित करने के लिए हुई। जिसमें दूर दूर के पण्डित पधारे थे। सुब्रह्मण्य शास्त्री ने प्रश्न किया, जिसका समुचित उत्तर राजाजी ने दिया। अब इनकी विद्या का यश चारो ओर फैल गया। १८२८ में कतिपय मित्रों की सहायता से उपासना समाज स्थापित किया क्योंकि उसमें ब्रह्म की उपासना की जाती थी।

सामाजिक कार्य—अब राजाराम मोहनराय की दृष्टि सामाजिक कुरीतियों की ओर पड़ी। उस समय हिन्दू जाति की सामाजिक दशा अत्यन्त चिन्तनीय हो रही थी। जात-पाँत के भूत के अतिरिक्त सती प्रथा का दानव स्वरूप अपनी प्रौढ़ता पर था, जिसके कारण स्त्रियाँ बलपूर्वक चिता पर रख कर पति-मृत्यु के पश्चात् जला दी जाती थीं। कलकत्ता, ढाका, मुर्शिदाबाद, पटना और काशी आदि में १८२६ में ५१८ स्त्रियाँ और १८२७ में ९५१ स्त्रियाँ और १८२८ में ४६३ स्त्रियाँ चिता पर जलाई गयीं। इसी से इस दानवी प्रथा की भयङ्करता का अनुमान लगाया जा सकता है। मिस्टर पेमस् (The satti's cry to Brition) अर्थात् 'इङ्गलैण्ड में सती की पुकार' नामक पुस्तक में एक स्थान पर लिखा है—मेरा विश्वास है कि बाँसों के द्वारा बलप्रयोग करने की प्रथा समस्त बंगाल प्रान्त में प्रचलित है। चितानल की लपट से विधवा के भागने की सम्भावना को रोकना ही इसका प्रयोजन है क्योंकि यदि

सती चिता पर से भाग जाए तो उसका कुल सदा के लिए कलङ्कित समझा जाता है। उसी पुस्तक में पुनः लिखा है—हिन्दुस्तान के कुछ भागों में प्रचलित वर्त्तमान सती प्रथा के अनुसार विधवा को जलाने में बल का प्रयोग किया जाता है। चाहे सती होने के संकल्प करने में विधवा कितना भी स्वाधीन क्यों नहीं हो। विधवा ज्योंही प्रदक्षिणा करके चिता पर चढ़ती है त्यों ही कुछ लोग चितापर लड़कियों को गिराकर पति के मृतशरीर के साथ दो या तीन रस्सियों से बाँध देते हैं। इस प्रकार बँधे हुए शरीरों पर कई लम्बे लम्बे बाँस डाल दिए जाते हैं। ये बाँस चिता के दोनों ओर भूमि में अच्छे प्रकार गड़े होते हैं, जिसके कारण स्त्री के पास चितानल पहुँचने के समय उसे अपने शरीर को छुड़ाकर भागना असम्भव हो जाता है। लकड़ी के लट्ठे शीघ्र चिता पर डाले जाते हैं और क्षणमात्र में ही चिता में आग लगा दी जाती है। फैनी पार्क्स (Frany Parks) नामवाली एक यूरोपीयन महिला ने अपनी यात्रा का विवरण लिखते हुए अपनी पुस्तक में सती-दाह सम्बन्धिनी अनेक घटनाओं का हृदय विदारक चित्र खींचा है। उसमें से एक घटना इस प्रकार है—पहली नवम्बर १८३० ई० को कानपुर निवासी एक धनिक वणिक की मृत्यु होने पर उसकी विधवा स्त्री सती होने के लिए उद्यत हुई। कानपुर में गङ्गा के किनारे सतीदाह देखने के लिए बड़ी भीड़ एकत्र हुई। अपने सब आभूषन पहन कर सती ने स्वयं चिता पर आग लगाई। बड़े साहस और उत्साह के साथ वह अपने स्वामी का शिर गोद में रखकर चिता पर बैठ गई और 'राम नाम सत्य है, राम नाम सत्य है' कहकर घोर चित्कार करने लगी परन्तु जब आग की लपट उसके समीप पहुँचने लगी

तब वह अधिक यन्त्रणा न सहकर गङ्गाजी में कूदने के लिए उद्यत हुई। इसी अवसर पर सती पर किसी प्रकार का बल प्रयोग नहीं हो इसीलिए कानपुर के मजिस्ट्रेट स्वयं वहाँ उपस्थित थे और उन्होंने नंगी तलवार हाथ में लिए हुए एक सिपाही को चिता के निकट खड़ा कर दिया था। जब सती चिता से उठकर भागने की चेष्टा करने लगी तब मजिस्ट्रेट का आदेश भूलकर वह सिपाही पुरातन स्वभावानुसार उसको तलवार से मारने के लिए उद्यत हो गया। सती घबड़ा कर फिर चिता की ओर चली गयी। मजिस्ट्रेट ने सिपाही को शीघ्र कैद कर लिया। सती ने फिर एक बार भागने का प्रयत्न किया और इस बार वह गङ्गा में कूद पड़ी। उसके सम्बन्धी यह कहकर इधर-उधर दौड़ने लगे और कहने लगे कि इस सती को बलपूर्वक बाँध कर चिता पर डाल दो और ऐसा ही किया जाता यदि मजिस्ट्रेट साहब ने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया होता। मजिस्ट्रेट ने शीघ्र उसको पालकी में बैठाकर अस्पताल में भेज दिया।

इन घटनाओं से पाठक समझ गए होंगे कि किस प्रकार इस पैशाची मनोवृत्ति का घर हिन्दूजाति में हो गया था। राजाराम मोहनराय ने इसको दूर करने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया परन्तु निर्दय कट्टर पन्थियों ने उसका भी विरोध किया। बनावटी वेद मन्त्र तैयार किया गया। ऋग्वेद का— इमा नारी विधवा सुपत्नी राज्जनेन सर्मिपा संस्पृशन्ताम्, अनश्रवो अनमीवा सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे। अग्रे को मग्रे बनाकर दाकियानूस पण्डित वेद से सती प्रथा सिद्ध कर रहे थे। राजा जी ने इसका भण्डा फोड़ किया और जनता के समक्ष वेद का वास्तविक स्वरूप रखा। राजा जी के प्रयत्नों

से विलियम वेंटिङ्ग के समय में सती प्रथा के विरुद्ध कानून बन गया, अब किसी प्रकार कहीं सती होने की सम्भावना नहीं ।

राजा जी यावज्जीवन हिन्दूजाति के उत्थान के लिए चेष्टा करते रहे और राजनैतिक सुधार की ओर भी आपने ध्यान दिया। दिल्ली सम्राट् की ओर से प्रतिनिधि होकर विलायत गए और वहीं २७ सितम्बर १८३३ को आपने स्वर्गारोहण किया। मरने के पश्चात् राजाजी के देह में यज्ञोपवीत पाया गया। मरने के पूर्व आपने अपनी स्त्रियों से कहा था कि मेरा अन्त्येष्टि संस्कार हिन्दू शास्त्रों के अनुसार होना चाहिए।

राजाराम मोहनराय के हृदय में हिन्दू जाति के प्रति महान् प्रेम था। उन्होंने हिन्दू शास्त्रों को भी पढ़ा था और अन्य भाषाओं के अध्ययन में आपने पर्याप्त समय लगाया था। संस्कृत वे इतना ही जानते थे जिससे कि किसी का उत्तर दे सकें। उनका विश्वास था हिन्दुधर्म के अन्तर्गत त्रुटि अवश्य है किन्तु हम उसका संशोधन कर सकते हैं। वे समझते थे कि बिना अंग्रेजी पढ़े भारतीयों का उत्थान नहीं होगा अतः अंग्रेजी शिक्षा की ओर आपने विशेष अभिरुचि दिखलाई। राजाजी उपनिषद् और गीता के भक्त थे। उनको ईसाइयों की उपासना-पद्धति अच्छी लगती थी जिससे कि वे वैदेशिक वातावरण के प्रभाव से वञ्चित नहीं रह सके। कुछ भी हो वे महान् थे और उनका विचार महान् था। ऐसे सुपुत्रों को पाकर भारतीय विचारधारा और भी अधिक वेगवती होती है।

केशव चन्द्रसेन—राजाराम मोहनराम के मरने के पश्चात् देवेन्द्रनाथजी ब्रह्मसमाज के आचार्य प्रतिष्ठित हुए। ऐसे ही समय में केशव चन्द्रसेन का समागम हुआ। केशवचन्द्रजी

की योग्यता और प्रतिभा को देखकर देवेन्द्रनाथजी ने उन्हीं को आचार्य बना दिया।

जीवन—श्रीकेशव चन्द्रसेन का जन्म नवम्बर १९ को १८३८ ई० में हुगली जिला के जरीआ नाम के गाँव में हुआ। आपकी परम्परागत उपाधि सेन थी। सेन भी बँगाल में श्रेष्ठ समझे जाते थे और इन लोगों की जीविका चिकित्सा थी। इनके पिता जी की प्रारम्भिक शिक्षा अँग्रेजी में हुई। बालकपन से ही श्री केशवचन्द्रसेन में धार्मिक भावना थी और अन्य विद्यार्थियों के समान ये अधिक समय खेल में नहीं बिताते थे परन्तु अपना समय धार्मिक कार्यों में ही व्यतीत करते थे। १८ वर्ष की अवस्था में इनका संस्कार भी सम्पन्न हुआ किन्तु उस विवाह से ये पहले सन्तुष्ट नहीं थे। आप नौकरी का त्याग कर धर्म प्रचार में लग गए। आपने घूमघूम कर स्थान स्थान पर ईसाइयों के प्रश्नों का उतर दिया और हिन्दुधर्म की विशेषता पर भाषण भी दिया। ईसाइयों के विरोधात्मक लेखों का उत्तर Indian Minor नामक एक पाक्षिक अँग्रेजी पत्र निकाल कर दिया। यह कहा ही जा चुका है कि श्री देवेन्द्र नाथ जी ने इनके गुणों से मुग्ध हो उन्हें ब्रह्म समाज का आचार्य बना दिया था। आपने आचार्य का पद सुशोभित करते ही हिन्दुत्व का प्रतीक सूत्र का बहिष्कार कर दिया। इनकी कुछ बातों से ब्रह्मसमाज के लोग असन्तुष्ट हो गए। अतः आपने पुराने ब्रह्मसमाज से हटकर नवीन ब्रह्मसमाज की स्थापना की। नवविधान चलाया, जिसमें ईसाइयों के समान जल दीक्षा (Baptiom) का विधान है। ईसाइयों के समान मृतचिन्ह सलीब का विधान बताया गया है। १८८४ ई० की ८ जनवरी को आपका देहान्त हुआ।

विशेष समीक्षा—केशवचन्द्र भी प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। धर्म के प्रति उनकी श्रद्धा थी। वे चाहते थे कि हिन्दुओं की अवस्था सुधरे तदर्थ ब्रह्मसमाज विवाह कानून भी बन गया। वे सामाजिक सुधार के आगे किसी की कोई चिन्ता नहीं करते थे। धर्म प्रचार के लिए आपने देश-विदेश की यात्रा भी की थी। यह सब गुण होते हुए भी भावुकता आप में विशेष थी, जिसके फलस्वरूप ईसाइयों ने बहुत अनुचित लाभ उठाया। एक बार भावुकता में आकर केशवचन्द्रसेन ने कहा था कि ईसा सबसे बड़े पुरुष थे। ईसाइयों ने इस बात को छपवा कर लोगों में वितरण करवाया। अतः केशवचन्द्र जी को उसका संशोधन करना पड़ा और ठीक तात्पर्य समझाना पड़ा। ईसाइयों ने इस पर प्रचार किया कि केशवचन्द्र जी ने अपना विचार परिवर्तित कर दिया है। आप भक्ति रस से विह्वल होकर इधर उधर घूम कर कीर्तन भी करने लगे। इस प्रकार आपकी विचार-चंचलता से ब्रह्मसमाज का वह रूप नहीं रहा जो कि राजाराम मोहनराय के समय में था तथापि ब्रह्म-समाज ने बहुत कुछ सुधार का काम किया। इसमें यही त्रुटि रही कि यह हिन्दू धर्म तथा हिन्दू संस्कृति में विदेशीपन की छाप लगाना चाहता था। कपिल, गौतम, कणाद के वाक्यों की अपेक्षा मूसा, ईसा और मुहम्मद के वाक्य इसमें अधिक रूप से आहत थे। इस प्रकार नवीन ब्रह्मसमाज 'व्याघ्रचर्मा-वच्छन्न रासभ' की तरह हिन्दुओं के अन्तर्गत सशङ्क दृष्टि से देखा जाने लगा। तथापि उस समय एक महान् आत्मा का प्रादुर्भाव हो चुका था। जिसकी त्याग-तपस्या, अखण्डब्रह्मचर्या, प्रखर प्रतिभा और निर्भीकता से विरोधी थर्रा गए थे। पाखण्ड का प्रासाद गिर रहा था और मृतप्राय हिन्दूजाति को चारों

ओर से विधर्मी नोच रहे थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने नव-जीवन का संचार किया। उनका संस्थापित आर्य समाज पुनः पुरातन वैदिक युग लाकर देश के सामने उपस्थित किया। यह अन्तिम विचारधारा है जिसने करोड़ों वर्षों से आई 'वैदिक स्रोत' को उसी निर्मल रूप में लाकर विश्व के समक्ष प्रवाहित किया। इसके शस्त्र तर्क और प्रकाश वेद हैं। यह बुद्धिवाद से समस्त बातों का परीक्षण करता है। जिसके कारण इसके आगे विधर्मी थर्राते हैं। मिथ्या गपोड़चौथ के जाल में फँसा कर रखने वाले मौलवी, मुल्ला, पादरी और पंडित दूर से ही इससे दुहाई माँगते हैं।

आर्य्य समाज

भारत के बौद्धिक क्षेत्र में आर्य्यसमाज का प्रमुख स्थान है जिसने भारत की राजनैतिक धार्मिक और सामाजिक जीवन में घोर परिवर्तन किया है। कांग्रेस के इतिहास लेखक डा० पट्टाभि सीता रमैया ने लिखा है कि भारतीय आजादी के पथ को प्रशस्त करने वाला कांग्रेस के पहले आर्य्य समाज ही है। पं० जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि—आर्य्यसमाज ने अछूत और नारी-समाज के उत्थान के लिये महान् प्रयत्न किया है। आर्य्य समाज की व्यापकता का यह नमूना है कि लगभग ४५ वर्षों में देश और विदेश के कोने २ में भारतीयता का संदेश गूंज गया। अमेरिका के प्रवासी भारतीयों के भीतर सांस्कृतिक, धार्मिक और राष्ट्रीय जागरण के लिये आर्य्य समाज ने सर्वप्रथम

अपने वैदिक दूतों को भेजा। फिजी, मौरिसस, मलाया, बङ्काक आदि देशों में गये हुये अशिक्षित भारतीयों को विधर्मी बनने से आर्य्य समाज ने रोका है। आज भारत में जातिगत भेदभाव के कारण अनेक सम्प्रदाय चल पड़े हैं। छूत-अछूत का भूत तो इतना जबर्दस्त हो गया है कि उस प्रभाव से राजनैतिक जगत् भी प्रभावित हो गया है। डा० अम्बेडकर अलग अछूतों का प्रतिनिधित्व चाहते हैं। आदि प्रमुख विषय हैं जिससे भारतीय जनता के उत्थान में बाधा पड़ रही है। आर्य्य समाज ने इन सारी कुरीतियों को दफनाने का पहले ही प्रयत्न किया। आज सैकड़ों अछूत वेद पढ़कर ब्राह्मण हो वैदिक धर्म का प्रचार करते हैं और हिन्दुओं के यहाँ धार्मिक कृत्य सम्पादित कराते हैं। जंगली जातियों के भीतर आर्य्यसमाज ने घोर परिश्रम किया है जिससे वे इस योग्य बनें कि अपने को समझें और सभ्य समाज में उच्चपद प्राप्त करें। आप रांची के मुराडों और संथाल प्रगना के संतालों में आर्य्य समाज का विद्यालय और सेवा-आश्रम पायेगें। भारत के जिस स्थान पर ईसाई पादरी-प्रचुर सम्पत्ति लेकर मुराडा डराँव को पथ भ्रष्ट कर रहा है वहाँ पर आर्य्य समाज के कार्य कर्त्ता को इनके मुकाबिले में कार्य्य करते हुए पायेगें।

आर्य्य समाज के प्रयत्नों से विधर्मी विदेशियों की दाल नहीं गली। बेटिकान का पोप जो सम्पूर्ण भारत को ईसा के चरणों पर झुकाने की कोशिश करता था उसकी कोशिश बेकार गयी और सारी इच्छाओं पर पानी फिर गया। ४०० सौ वर्षों तक अपार धन राशि व्यय करने पर भी एक करोड़ हिन्दू जनता ने ईसायत को स्वीकार नहीं किया। सारे साधन, अपार सम्पति, परतन्त्र और दीन भारत को नहीं लुभा सका, यह आर्य्य-

समाज का प्रयत्न है। क्योंकि भारत के प्रत्येक कोने में आर्य समाज की शिक्षण संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। बिदेशी वातावरण का प्रभाव हमारे देश के नवयुवक और नवयुवतियों पर न पड़े, विदेशी भाषा पढ़ते हुये भी वे अपनी आदर्श, गौरवमय सभ्यता को न छोड़ें इसके लिये हजारों स्कूल कालेज और कन्या पाठशालायें आर्य्य समाज के तत्वावधान में चल रहीं है। इनके अतिरिक्त आर्य्य समाज के स्वतन्त्र शिक्षणालय जैसे—गुरुकुल, और ब्रह्मचर्य्याश्रम हैं जहाँ अविवाहित बालक और बालिकायें वाह्य वातावरण से दूर हो अलग अलग शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। आर्य्यसमाज के प्रयत्न से ही पंजाब प्रान्त में हिन्दी का प्रचार हुआ। दक्षिण भारत में सर्वप्रथम हिन्दी का प्रवेश आर्य्यसमाजियों के द्वारा हुआ। क्योंकि आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि स्वामीदयानन्द जी सरस्वती, जो संस्कृत के अगाध विद्वान् थे, उनकी जन्म-भाषा गुजराती थी, तथापि उन्होंने अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में ही लिखा है। वे हिन्दी को आर्य्यभाषा कह कर पुकारते-थे। मिस बन्धुओं ने लिखा है कि स्वामी दयानन्द प्रथम महापुरुष हैं जिन्होंने हिन्दी को इतना गौरवमय स्थान दिया है।

आज गाँधी जी, पं० जवाहर लाल नेहरू अपने को हिन्दी का भक्त कहते हैं किन्तु इन लोगों का सम्पूर्ण कार्य्य अंग्रेजी में होता है। इतना ही नहीं, अपितु अपनी आत्म कथा तक भी अंग्रेजी में लिखते हैं। स्वामी दयानन्द की राष्ट्रीयता ऐसी लँगड़ी नहीं थी। केशवचन्द्र को फटकार दिया जब केशव बाबू कहे कि—स्वामी जी आप अंग्रेजी पढ़े होते तो देश का और कार्य्य कर सकते। स्वामी जी ने कहा कि आप ऐसे लोगों को जो

देश और धर्म के नेता हैं, संस्कृतभाषा जो इस देश की प्राचीन भाषा है, जिसमें भारतीयों का सम्पूर्ण इतिहास भरा पड़ा है उसका अध्ययन करना चाहिये। अंग्रेजी तो इच्छा पर है क्योंकि यह विदेशी भाषा है पहले स्वदेशीय भाषा सीखनी चाहिये।

स्वामी दयानन्द का जीवन

गुजरात प्रान्त के मर्वी राज्य के काठियावाड़ नगर में एक औदीच्य कुलीन ब्रह्मण परिवार में स्वामी दयानन्द का जन्म १८२४ ई० में हुआ। इनके पिता का नाम अम्बाशङ्कर त्रिपाठी था। पिता शैव महानुयायी थे इसलिये उनके घर शिव की पूजा विशेष होती थी। स्वामी दयानन्द का जन्म नाम मूलशङ्कर था। मूलशङ्कर अपने पिता के एक मात्र सुपुत्र थे। कहते हैं कि मूलशङ्कर के पिता ने पुत्र प्राप्ति के लिये बहुत शिवार्चन और शङ्कर की भक्ति की थी, इसलिये पुत्र का नाम भी मूलशङ्कर रखा। मूलशङ्कर का यज्ञोपवीत संस्कार ८ वर्ष की अवस्था में हो गया। चौदह वर्ष की अवस्था में सम्पूर्ण यजुर्वेद और सिद्धान्त कौमुदी मूलशङ्कर को कण्ठाग्र हो गयी थी। बालक की प्रतिभा देखकर सब लोगों के मुख से यही आवाज निकलती थी कि एक दिन यह बालक महान् पुरुष होगा। एक बार की घटना है जिसने मूलशङ्कर के विचार को बदल दिया। 'शिवरात्रि का त्यौहार।'

हिन्दु प्रथा के अनुसार फाल्गुन त्रयोदशी को शिवरात्रि व्रत आता है उस दिन प्रायः सब हिन्दू शिव की भक्ति में उपवास रहते हैं। और शङ्कर की प्रतिभा, पर द्रव्य दीप, नैवेध

चढ़ाते हैं। मूलशङ्कर के घर यह पर्व बहुत समारोह से मनाया जाता था क्योंकि मूलशङ्कर के पिता शिव के अनन्य भक्त थे। उन्होंने अपने पुत्र मूलशङ्कर को यह व्रत रखने के लिये आदेश दिया। पिता की आज्ञा मान कर बालक मूलशङ्कर भी उपवास रहे और दिन का समय शिवपुराण की कथा सुनने में व्यतीत किया। शिवपुराण में लिखा है कि शिव के व्रत रखने वाले को रात्रि में शङ्कर दर्शन देते हैं। अतः शिव दर्शन की प्रतीक्षा में बालक मूलशङ्कर ने रातभर न सोने का संकल्प किया। कथा सुनते २ शिव के सम्पूर्ण भक्त और मन्दिर के पुजारी खर्राटे लेने लगे। एक मूलशङ्कर ही जगे थे। उनका ध्यान शिव की प्रतिमा की ओर था वे प्रतीक्षा में थे कि अब शङ्कर आकर दर्शन देंगे। इस बीच में क्या देखा कि दो तीन चूहे निकल शिवमूर्त्ति पर चढ़ कर चढ़ाये हुये अच्छत को खाने लगे। मूलशङ्कर ने सोचा क्या यही शंकर हैं। जिसकी कथा शिवपुराण में सुनाई गयी है, उसमें तो शङ्कर के दूसरे रूप का वर्णन है तो क्या शङ्कर में इतनी शक्ति नहीं कि अपने ऊपर चढ़े हुये चूहों को हटा सकें। इस प्रकार अनेकों विचार तरङ्ग मानस-महोदधि में उठने लगे। अन्त में तर्क बुद्धि की जीत हुई। प्रतीत हुआ निश्चय ही यह शङ्कर नहीं अपितु मनुज निर्मित प्रस्तर की प्रतिमा है। अब सत्य शङ्कर की खोज करनी चाहिये। जन्म-जन्मातर के सुप्त संस्कार जाग उठे। भारत के नवोदय का काल आ गया। परतन्त्रता की बेड़ी से निगडित भारत वसुन्धरा के शुभ दिन दिखने लगे। मूलशङ्कर मन्दिर से उठ कर घर चले आये और माता से भोजन लेकर बुभुक्षा की निवृत्ति की। किन्तु मन में शिव के लिये बड़ी बेचैनी थी।

इसी बीच एक दूसरी घटना घटी—मूलशङ्कर के चाचा की मृत्यु हो गयी। चाचा की मृत्यु से उनको बहुत ही मानसिक क्षोभ हुआ क्योंकि पिता से अधिक प्रेम चाचा ही किया करते थे। चाचा के पश्चात् उनकी बहिन को हैजा हो गया जिससे कुछ ही घंटों में वह बेचारी परलोक चल बसी। घर के सम्पूर्ण लोग रो रहे थे किन्तु मूलशङ्कर के ऊपर केवल उदासी छायी हुई थी वे इसी विचार में निमग्न थे कि आखिर यह मृत्यु क्या है, इससे छुटकारा मिल सकता है कि नहीं ? इसी चिन्ता से मूलशङ्कर उदास रहने लगे। माता पिता को बेटे की उदासीनता से बड़ी चिन्ता हुई। वे किसी प्रकार उन्हें संसारिक प्रलोभनों में डालने की चेष्टा करने लगे। निदान वे लोग मूलशङ्कर के विवाह की चर्चा चलाने लगे। मूलशङ्कर ने अपने मित्रों से विवाह की अनिच्छा प्रकट की। किन्तु कौन सुनता है। विवाह निश्चित हो गया, एक ही मास का विलम्ब था कि मूलशङ्कर घर से निकल पड़े। चारो ओर खोज हुई किन्तु कहीं पर पता नहीं चला, अन्त में सिद्धपुर मेला में पकड़े गये। क्योंकि एक साधु के द्वारा अम्बाशङ्कर त्रिपाठी को सूचना मिल गयी थी कि मूलशङ्कर सिद्धपुर मेला में जायेंगे। पिता ने बहुत डाँटा और धमकाया, मूलशङ्कर ने पिता को बताया कि भविष्य में कभी नहीं भागूँगा।

ता० ३ नवम्बर १८४४ ई० को घर से पुनः निकल पड़े। इसबार निकलने के पश्चात् पुनः गृह का दर्शन नहीं किया। मूलशङ्कर ने सत्यगुरु की खोज में महान् कष्ट का सामना किया, वर्फीले चट्टानों को लांघा, अलखनन्दा नदी के किनारे जाड़ा से अपना शरीर क्षत विक्षत कराया पर्वत के गुफाओं और पहाड़ों की चोटियों-पर भ्रमण किये किन्तु कहीं पर उन्हें गुरु का दर्शन

नहीं हुआ। जो कोई मिलता वह शङ्काओं का ठीक, समाधान करने में, असमर्थ ही पाया जाता था। इतने दिनों के भ्रमण से मूलशङ्कर ने हठयोग आदि बहुत बातें सीखली थीं, अवधूत होकर पापके स्थान पर ज्ञान उपार्जन करते थे। स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से उन्होंने सन्यासाश्रम की दीक्षा भी लेली थी, अब मूलशङ्कर दयानन्द कहे जाते थे, किन्तु यह दीक्षा उन्होंने ज्ञान प्राप्ति से नहीं ली थी जैसा कि उन्होंने स्वयं कहा है कि भोजन के कष्टों को निहत करने के लिये मैंने सन्यास लिया था क्योंकि सन्यासी प्रत्येक स्थान पर स्वच्छन्दता से भोजन कर सकता है, उसके सामने छुआछूत का कोई झंझट नहीं रहता है।

घूमते घूमते दयानन्द मथुरा आये, वहाँ एक दण्डी सन्यासी रहते थे, जिनका नाम विरजानन्द था। दण्डी जी संस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् और योग क्रिया में निपुण थे। दयानन्द ने उन्हीं से शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। अनुकूल गुरु प्राप्त कर दयानन्द बहुत ही प्रसन्न हुये दत्तचित्त हो विद्या ग्रहण में तल्लीन हो गये। एक एक कर सारी शङ्कायें हटने लगीं, हृदय में ज्ञान प्रकाश उदय होने लगा। दण्डी जी बहुत ही अनुशासन प्रिय थे, शिष्यों के लिये उनका नियम बहुत कड़ा था, वे केवल पढ़ाई ही नहीं अपितु सारी बातों पर बहुत देखरेख रखते थे। स्वामी दयानन्द के लिये तो और भी कड़ा नियम था। दण्डी जी का कहना था कि विद्यार्थी अवस्था में जो अनुशासन प्रिय नहीं होगा तो भविष्य में कुछ भी नहीं कर सकता। स्वामी दयानन्द भी गुरु भक्ति के साथ उन कड़ी आज्ञाओं का पालन तत्परता से करते थे। उदाहरणतः—एक बार की घटना है कि आश्रम में झाडू देकर स्वामी जी ज्योंही कूड़ा बाहर फेंकने जा

रहे थे कि दण्डी की निद्रा टूट गयी, दयानन्द कूड़ा फेंकना छोड़कर दण्डी जी को पानी देने चले गये. स्नानादि कराने के कारण कूड़ा फेंकने की क्रिया भूल गयी। संयोग वश प्रज्ञा-चक्षु * दण्डी जी का पैर उसी पर पड़ गया।

जिस प्रकार दण्डी जी विद्या के समुद्र थे उसी प्रकार क्रोध में दुर्वासा के अवतार थे। उन्होंने दयानन्द को दण्ड से ताड़ना प्रारंभ किया, उससे दयानन्द का बायाँ हाथ टूट गया, ताड़ना देने के पश्चात् गुरुभक्त दयानन्द ने कहा कि मुझे दण्ड देने से बाँह में अधिक कष्ट हो गया होगा अतः मैं चाहता हूँ उसे दबा कर व्यथा दूर कर दूँ। ऐसी गुरुभक्ति को धन्य है। दण्डीजी का यह भी नियम था कि वे पाठ को एक ही बार पढ़ाया करते थे पाठक समझ सकते हैं कि यह नियम कितना कठिन था। संस्कृत व्याकरण कितना कठिन होता है। मैक्समूलर साहब ने लिखा है कि संसार की सब भाषाओं के व्याकरण से पाणिनीय व्याकरण अत्यन्त कठिन है इस पर भी एक बार में स्मरण करना। एक दिन स्वामी दयानन्द को पूर्व का पाठ भूल गया। उन्होंने दण्डी जी से इसे पुनः पढ़ाने का निवेदन किया। दण्डी जी अपने नियमानुसार अस्वीकृत कर दिये और कहे कि:—तुम को पूर्व का पाठ स्मृत नहीं है तो यमुना में जाकर डूब मरो अथवा स्मरण कर आओ। दयानन्द गुरु की आज्ञा मान कर यमुना नदी के किनारे यह संकल्प कर गये कि पाठ का चिन्तन कर गुरुजी को सुनाऊँगा अथवा नदी में डूब मरूँगा। कुछ समय के चिन्तन के पश्चात पाठ स्मृत हो गया।

---

* दण्डी जी अन्धे थे पाँच वर्ष की अवस्था में चेचक के कारण उनकी आँखें खराब हो गयी थीं।

इधर दण्डी जी को शिष्य की याद आयी, तब खोजने में लग गये उन्हें विश्वास हो गया कि दयानन्द गुरुभक्त हैं यदि उसको पाठ स्मृत नहीं होगा तो अवश्य ही प्राण त्याग देगा। प्रज्ञाचक्षु जी स्वयं यमुना की ओर चल पड़े और कातर शब्दों से दयानन्द ! दयानन्द !! कह कर आवाज लगायी, तब तक स्वामी दयानन्द आ रहे थे उन्होंने गुरु के चरणों को छू कर प्रणाम किया और कहा कि कष्ट सहने की क्या आवश्यकता थी मैं तो आ ही रहा था। उस समय दण्डी जी की अवस्था बहुत ही करुणा जनक थी। जिस प्रकार अपने खोये हुये मणि को प्राप्त कर सर्प प्रसन्न होता है अथवा गाय अपने सद्यः प्रभूत बछड़े को प्राप्त कर प्रसन्न होती है, उसी प्रकार दयानन्द को पाकर दण्डीजी प्रसन्न हो गये। सम्पूर्ण विद्या समाप्त कर १८६१ ई० में दीक्षा लेकर प्रस्थान करने के लिये गुरुजी के पास पहुंचे, गुरु ने दक्षिणा माँगी—संसार को उद्धार करो वैदिक सिद्धान्त का प्रचार करो, दयानन्द गुरु की आज्ञा लेकर चल पड़े। पुनः १८६७ ई० में गुरु चरण में उपस्थित हुये। इसबार पुनः गुरुजी ने अपनी दक्षिणा की याद दिलायी, यह गुरुजी से अन्तिम भेंट थी। दयानन्द कृत-संकल्प होकर गुरुजी से विदा हुये।

दयानन्द ने गुरु की आज्ञा मानी और वैदिक धर्म के प्रचार के लिये व्रतस्थ होकर अनेकों स्थानों का भ्रमण किया। उन्होंने सबसे पहले भारत में अनादिकाल से बसने वाली हिन्दू जाति के पतन पर विचार किया और सोचा, क्यों इतनी बड़ी जाति आज पराधीन बनी हुई है? इसका कारण क्या है? पता लगा-इसके विचारों में गन्दगी आ गयी है क्योंकि दूषित विचारों ने इसके पवित्र विचार को मलीमस कर दिया है अतः इसी मलीमस को दूर करना चाहिये। इनको सबसे पहले

जन्म-जात की व्यवस्था गड़बड़ विदित हुई, क्योंकि इस विचार से कोई जन्म से अपने नीच तो कोई ऊँच बन बैठा है, योग्यता की कोई प्रतिष्ठा नहीं है, वैदिक धर्म गुण कर्म स्वभावानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मानता है। अतः इस भ्रम को दूर करना चाहिये क्योंकि बिना इसे दूर किये कोई भी आन्दोलन इस देश में सफलीभूत नहीं हो सकता। अतः स्वामीजी ने जन्मजात के ढोंग का खण्डन किया। दूसरी त्रुटि महर्षि को यह खटकी कि यहाँ के निवासी प्रतिमा पूजन में व्यर्थ समय लगाते हैं। इससे भारत का अरबों रुपया खर्च हो रहा है, जिस किसी की प्रकृत्ति धर्म की ओर होती है वह चाहता है कि एक शिव मन्दिर या राम मन्दिर बनवा दूँ आदि। इस कुप्रकृति से विद्यादान की महत्ता नष्ट हो गयी, गुरुकुल प्रणाली का विनाश हो गया। सच्ची तपस्या का तिरोभाव हो गया, विद्या तीर्थ विलुप्त हो गये। यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि जो ईश्वर प्राप्ति एवं मानवोन्नति के साधन थे वे प्रतिमा-पूजन से विलीन हो गये। ईश्वर भक्ति के नाम पर अघोरपंथ वाम मार्ग चल पड़ा है। आचार के नाम पर अपने हाथ से भोजन बना कर खाना किसी से जरा भी स्पर्श न हो यही रह गया है। अतः स्वामी दयानन्द ने इसका घोर विरोध किया—और सम्पूर्ण पाखण्ड के विरोध में अपना युद्ध छेड़ दिया। उस समय हिन्दुओं की दृष्टि में काशी का बड़ा महत्व था, वहाँ पर संस्कृत के बड़े बड़े विद्वान् रहते थे और आज भी रहते हैं। काशी की ही व्यवस्था हिन्दुओं के लिये मान्य समझी जाती है। पौराणिक हिन्दुओं का विश्वास है कि काशी शङ्कर के त्रिशूल पर बसी है। इसलिये ऋषि ने सोचा कि सर्वप्रथम काशी पर ही विजय प्राप्त करना

चाहिये। प्रधानमल्ल निर्वहण न्याय से सबों का अध्याहार हो जायेगा। १६ नवम्बर १८६९ ई० को ऐतिहासिक शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ।

श्री काशी नरेश सभापति के आसन को सुशोभित कर रहे थे, एक ओर अकेला दयानन्द और दूसरी ओर काशी की पण्डित मण्डली थी। स्वामी जी का कहना था कि वेद संहिता में प्रतिमा पूजन का विधान नहीं है। पण्डित समाज का कहना था कि प्रतिमा पूजन वेद में निहित है। अब उचित यह था कि वेद की पुस्तक लाकर प्रतिमा पूजन सम्बन्धी मन्त्र दिखा दिया जाय किन्तु किसी ने भी नहीं दिखाया। अन्त में बाल शास्त्री नामक एक पण्डित महाशय दो पन्ने आगे करते हुये बोले—देखो यह वेद है। इसमें लिखा है कि 'यजमान यज्ञ की समाप्ति पर दशवें दिन पुराण का पाठ सुनें'। वास्तव में वे पन्ने वेद के न थे। ऋषि देख ही रहे थे कि हल्ला मचा 'दयानन्द हार गया' पण्डित लोग खिल्ली उड़ाते उठ गये। उनके शिष्य तालियाँ पीटने लगे। एक कोलाहल मचा। धूर्तों ने उधम मचाना प्रारंभ किया। कुछ लोग प्यारे ऋषि पर आक्रमण करने आगे बढ़े, कुछ गुण्डों ने ऋषि पर ढेले, गोबर और मिट्टी फेंके। पं० रघुनाथ प्रसाद कोतवाल (पुलिस) न होते तो महाराज का बुरा हाल होता।

इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इसमें स्वामी दयानन्द की विजय हुई। उनके अंग्रेजी The Pioneer (पायनियर) The Hindu Patriot (हिन्दु पैट्रियट) The Christian Intelligencer (क्रिश्चियन इनटेलिजेन्सर) आदि ने ऋषि की बड़ी प्रशंसा की। हिन्दु पैट्रियट ने लिखा—

दयानन्द सरस्वती और पण्डितों में भारी और लम्बा

शास्त्रार्थ हुआ। परन्तु पण्डितों का, जिन्हें अपनी शास्त्रज्ञता का बड़ा गर्व था, पूर्ण पराजय हुआ। पण्डितों ने जान लिया कि नियमबद्ध शास्त्रार्थ में ऐसे महान् व्यक्ति से बर आना असंभव है तो वह अपना उद्देश्य पूर्ण करने के लिये पापमय उपायों के अवलम्बन पर उतारु हो गये.....'। काशी के इस शास्त्रार्थ से देश के कोने कोने में वेद का संदेश पहुँच गया। इस प्रकार स्वामी जी ने सात बार काशी का दौरा किया। लेकिन कोई पण्डित स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर देने में अपने को समर्थ नहीं पाया जो सामने आकर शास्त्रार्थ करे। धीरे २ भक्तों की संख्या बढ़ने लगी। स्वामी जी के उपदेशों से लाखों ईश्वरभक्त, देशभक्त समाज सेवक उत्पन्न होने लगे।

स्वामी जी ने सोचा कि धर्म का प्रचार निरन्तर जारी रहे तदर्थ एक प्रजातन्त्रात्मक संस्थाकी नींव डालनी चाहिये।

अतः १८७५ को बम्बई (गिरगाँव) में आर्य समाज की नींव डाली गयी तब से यह संस्था अविकल रूप से देश की सेवा कर रही है। कई वर्षों तक निरन्तर प्रचार करने के पश्चात् ३० अक्तोबर १८८३ को दीपावली के दिन ऋषि दयानन्द का स्वर्गवास हो गया। उनकी मृत्यु का कारण अलीमर्दनखाँ था जो जोधपुर के महाराजाधिराज के यहाँ रहता था। उस समय राज्य में मुसलमानों की ही चलती थी। ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों से बहुत मुसलमान अप्रसन्न थे। अतः जगन्नाथ पाचक के द्वारा अलीमर्दनखाँ ने विष दिलवा दिया। स्वामी जी को घातक विष दिया गया था जिससे ऋषि किसी प्रकार एक मास तक जीवित रहे, अन्त में अजमेर आना सागर पर आकर इस नश्वर शरीर को छोड़ दिया।

स्वामी दयानन्द और हिन्दुजाति

इस लघु पुस्तक के पूर्व प्रकरणों में उन महापुरुषों के जीवन और संक्षिप्त कार्यों का निर्देश किया गया है जिन्होंने जाति के सांस्कृतिक उत्थान में बहुत बड़ा कार्य किया है। किसी ने अपनी लेखनी से तो किसी ने अपनी तपस्या से जाति को समय समय पर अमृत का प्याला पिलाया है। देश जाति की सेवा तभी हो सकती है जब देश का पुजारी कामिनी और कांचन के प्रलोभन में नहीं पड़ता है। भारतीय संस्कृति निर्माताओं ने पहले ही इससे मुख मोड़ लिया। तभी तो सम्राट मनु साधुवेश में रह कर प्रजा से गृहीत कर को प्रजा-रंजन में ही व्यय करते थे। सम्राट अशोक रात को घूम २ कर प्रजा के दुख का निरीक्षण करते थे। शासन का भार ब्राह्मण मन्त्रियों के हाथ में था। ब्राह्मण के लिये शास्त्रीय व्यवस्था थी कि वह द्रव्य लेकर अपने घर को न भरे। ब्राह्मण अधिक भूमि लेकर कृषि न करे। सादा जीवन सादी रहन सहन की प्रशंसा थी। ब्राह्मण त्याग मय जीवन व्यतीत करते थे। उस समय राष्ट्र जीवित था। उन्हीं की तपस्या का यह परिणाम है कि आज भी जाति जीवित और जागृत है। पिछड़े युग में जब अकबर और औरङ्गजेब का शासन था, राणाप्रताप और शिवाजी ने जाति को बचाया। अकबर की नीति मीठी थी, वह अपनी नम्र नीति से हिन्दू जाति को समाप्त कर देना चाहता था। बहुत राजा और महाराजा उसके पक्ष में हो गये। राजामान सिंह, टोडरमल, बीरबल और भगवानदास ऐसे नररत्न उसके दरबार में मित्रता पूर्वक रहने लगे। क्योंकि सबों पर कञ्चन, पद, प्रतिष्ठा का भूत सवार था। पद लोभ से देश हित दब गया

था। किन्तु रामवंशावतंस उदयपुर निवासी महाराणा प्रताप ही ऐसे अलौकिक महापुरुष थे जिन्होंने इस प्रतिष्ठा को जहर और मित्रता को हिन्दुजाति के लिये नागिन समझा। उस हिन्दुजाति के गौरव के लिये मेवाड़ केशरी ने जंगली जीवन व्यतीत किया, स्त्री और बच्चों को प्रचुर दिन भूखों रहना पड़ा तथापि राणाप्रताप अपनी प्रतिष्ठा से नहीं टले। शिवाजी और गुरु गोविन्द सिंह जी ने भी प्रताप के इस आदर्श को अपने सामने रखा और मुगल राज्य के मूल में ही अपना कुल्हाड़ा मार दिया। शाखा-पल्लव सहित सल्तनत गिर पड़ी, उन वीरों ने दिल्ली के शाही किले पर अपना झण्डा गाड़ दिया। उन वीरों की तपस्या से हरिभक्त प्रसन्न हो गये, गौमाता स्वछन्द होकर विचरने लगी, मन्दिरों में पुनः घंटे और घड़ियाल बजने लगे। आज भारत प्रत्येक आबाल वृद्ध उनके यश को गा रहा है और उनके उज्ज्वल चरित्र से अपने भीतर बल का संचार कर रहा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द इन्हीं महापुरुषों में थे। जिन्होंने हिन्दू जाति को बचा लिया। आज हिन्दू जाति का प्रत्येक बालक अथवा वृद्ध ऋषि के उपकारों को याद कर कृतकृत्य हो रहा है। राणा प्रताप और शिवा का आन्दोलन एक देशी था, उन लोगों का मुख्य उपदेश यही था कि हिन्दु जाति प्रजा बन कर न रहे। स्वामी दयानन्द के आन्दोलन में सब पहलुओं से विचार किया गया है जिससे स्वाधीन रहते हुये आर्य्यजन अपनी भाषा, वेश-भूषा आदि का परित्याग न करें। स्वामी दयानन्द के समय अंग्रेजी शासन अपना जड़ जमा रहा था। लार्ड मेकाले जो क्रिश्चियन नवयुवक थे, भारतीय विधान बनाने के लिये रुपयों के प्रलोभन में यहाँ आये थे। वे सम्पूर्ण

भारत को ईसाई देखना चाहते थे उन्होंने सोचा कि इस देश को क्रिश्चियन बनाने की सबसे सुन्दर विधि यही है कि यहाँ की शिक्षा अपने हाथ में लेली जाय, अंग्रेजी भाषा का प्रचार किया जाय, जिससे भारतीय अपने पूर्वजों को भूल कर हमारे दासानुदास बने रहें। अतः अंग्रेजी भाषा की नींव डाली गयी। इसका प्रभाव सबसे अधिक बंगाल में पड़ा। बंगाल का शिक्षित समुदाय ईसाइयत से प्रेम करने लगा, इसका कारण भारतीय प्राचीन भाषा देववाणी का ह्रास था। कपिल, गौतम, और व्यास के स्थान पर डार्विन, डाल्टन को गीत गायी जाने लगी। अंग्रेजी पढ़ा लिखा परिवार दुलार से अपने बच्चों का नाम अंग्रेजी में ही रखने लगा।

इस दूषित प्रभाव में बड़े बड़े नेता भी आ गये थे। राजा राम मोहनराय और केशवचन्द्र भी इस चाल को नहीं समझ सके। उन लोगों का विश्वास था कि बिना अंग्रेजी भाषा सीखे भारतीयों का उद्धार होना असंभव है। स्वामी दयानन्द इस नीति से ताड़ गये, और जोर देकर बोले—हमारी संस्कृत भाषा सारी भाषाओं की जननी है। इसी देश से सम्पूर्ण विद्या भूगोल में फैली है जैसा कि स्वयं महाराज लिखते हैं:—

जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोप देश में उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।

(सत्यार्थ प्रकाश)

इस उदाहरण से स्पष्ट विदित होता है कि ऋषि को अपने देश और अपनी भाषा से कितना प्रेम था। ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज की समालोचना करते हुये आप लिखते हैं कि जो कुछ ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में

मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और पाषाणादि मूर्ति पूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वच्छ भक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बदल लिये हैं, खान-पान विचारादि के नियम भी बदले हैं।

२—अपने देश की प्रशंसा तो दूर रही उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेजों की प्रशंसा भर पेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं, उनकी उन्नति कभी नहीं हुई।

३—वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्रह्म समाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक और चैतन्य लिखे हैं। किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है। इससे जाना जाता है कि उन लोगों ने जिनका नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुये हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया और अब भी खाते पीते हैं, अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना ब्रह्मसमाजी और प्रार्थना समाजियों को एतद् देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करते हैं। इङ्गलिश भाषा पढ़ के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धि कारक काम क्योंकर हो सकता है। (सत्यार्थ-प्रकाश)।

उपरोक्त उदाहरणों से पाठक सरलतया समझ गये होंगे

कि ऋषि दयानन्द हिन्दू संस्कृति, हिन्दू सभ्यता के कितने अभिमानी थे और आर्य जाति को गौरवमय स्थानपर ले जाना चाहते थे।

वेदाधिकारी और जाति समस्या

दौर्भाग्य से आज ५ हजार वर्षों से हिन्दुओं में यह विश्वास प्रचलित है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र ये चार वर्ण ईश्वर कृत हैं। इस विश्वास से हिन्दुओं का कहना है कि कोई आदमी जिसका जन्म जिस वर्ण में हो गया है वह उसी वर्ण में आजीवन रह सकता है उसकी उन्नति वर्णेतर में नहीं होगी। इस दूषित मनोवृत्ति से आर्य्यावर्त्त को अभ्युन्नति में बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी है। ऋषि लोग कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था मानते थे। किन्तु महाभारत युद्ध के पश्चात् यह संकुचित भावना आर्य्यों में घर कर ली। यद्यपि समय समय पर सुधारकों ने उस जन्मजात वर्णाश्रम व्यवस्था का तीव्र विरोध किया। प्रमाणतः भगवान् बुद्ध का वाक्य उद्धृत किया जाता है तथागत कहते हैं :—

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि योनिजं भत्ति संभवम्।
भो वादी नाम सो होति स चे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।

अर्थात्—मैं ब्राह्मणी माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। यदि वह सम्पन्न होता है तो उसे 'भो' से सम्बोधन किया जाता है। जिसके पास कुछ नहीं है और जो कुछ नहीं लेता है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (धम्मपद)

इस प्रकार गौतमबुद्ध ने जन्म जात का तीव्र विरोध किया और अपने संघ में प्रत्येक विरादरी के लोगों को आश्रय दिया। किन्तु भगवान् बुद्ध का आन्दोलन बहुत दिनों तक नहीं चला क्योंकि आर्य्यावर्त्त देश धर्म प्राण देश है। यहाँ ऐसी व्यवस्था नहीं चल सकती जिसके मूल में वेदादि प्राचीन शास्त्रों का प्रमाण न हों। फलतः उनका सिद्धान्त बहुत दिनों तक नहीं चला। महान् तार्किक शङ्कर ने इस मत को उच्छिन्न कर दिया। कबीर साहब के भी आन्दोलन के पीछे भी कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं था। इसलिये यह कुछ लोगों में फैलकर सीमित रह गया। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदादि-शास्त्रों की उपेक्षा नहीं कि अपितु बताया कि वेद गुण कर्मानुसार वर्णाश्रम व्यवस्था मानते हैं।

इस प्रकार ऋषि सत्य अर्थ का प्रकाश महागर्त में पड़ती हुई हिन्दुजाति को बचा लिया। और डंके की चोट से आवाज लगायी कि हमारी सामाजिक व्यवस्था पूर्ण है बिना उसके अनुसार चले विश्व का कल्याण नहीं हो सकता है जैसे :—

आश्रम व्यवस्था—भारतीय ऋषियों ने जीवन को चार भागों में विभक्त किया है। प्रत्येक आर्य यह समझता है कि मुझे १०० वर्ष तक जीवित रहना है। अतः २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम, २६ से ५० तक गृहस्थाश्रम, ५१ से ७५ तक वानप्रस्थ, ७६ से १०० तक सन्यास आश्रम है। इस चारों आश्रमों का अलग अलग कर्त्तव्य भी निहित है।

ब्रह्मचर्याश्रम—जन्म से लेकर २५ वर्ष तक की अवस्था का समय ब्रह्मचर्य का है। यह समय विद्याध्ययन और शारीरिक उन्नति का है। सांसारिक वातारवरण से हट कर गुरु के पास स्थित होकर विद्याध्ययन करना चाहिए। इस समय मनुष्य

अपने जीवन को जिस रूप में बनायेगा भावी जीवन सुखान्त या दुखान्त उसी प्रकार का होगा। इसलिए यह ब्रह्मचर्याश्रम सब आश्रमों की नींव समझा जाता है। इस आश्रम में जैसा अभ्यास बनेगा भावी जीवन वैसा ही होगा। पुरातन काल में २५ वर्ष के पश्चात् वर्णावस्था निर्धारित की जाती थी। जिसका जैसा स्वभाव होता था उसी के अनुसार उसे ब्राह्मण तथा क्षत्रियादि की उपाधि प्रदान की जाती थी। काल परम्परा से यह प्रथा आर्यावर्त से उठ गयी। आज प्रारम्भिक शिक्षा संसार के अन्तर्गत एक स्कूल में यदि कोई राजा का लड़का आता है तो वह प्रचुर साधनों से सुसज्जित होकर आता है और वहीं एक निर्धन का बालक आधापेट भोजन कर जीर्ण-शीर्ण कपड़ों को पहन कर आता है—तब भला महान् जीवन-वैषम्य क्यों न उत्पन्न हो। अमीरी जीवन व्यतीत करते हुए विद्याध्ययन करनेवाला व्यक्ति बड़ा होनेपर भी प्रचुर सामग्री के लिए लालायित रहता है और उसके अभाव में बाह्य उपायों से सामग्री एकत्र करता है। अतः उचित है कि सरस्वती माता के मन्दिर में एक वेशभूषा और तुल्यस्थिति में बालकों की शिक्षा दीक्षा हो। इसी महान् उत्तरदायित्व पूर्ण जीवन को सुन्दर और सुखमय बनाने के लिए ऋषियों ने इस ब्रह्मचर्याश्रम की नींव दी थी।

गृहस्थाश्रम—२५ की अवस्था के उपरान्त ५० वर्ष तक की अवस्था का समय गृहस्थाश्रम का है। इसके अन्तर्गत धनोपार्जन करना एवं गृहस्तीके सुखों का उपभोग करना चाहिए। इस आश्रम में शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट पञ्च महायज्ञों का पालन करना चाहिए। क्योंकि प्रत्येक को यह समझना चाहिए कि जन्म के समय उस पर तीन ऋण चढ़ जाते हैं। जिन्हें पितृ

ऋण, देव ऋण और ऋषि ऋण कहते हैं। इन तीनों ऋण के उद्धार के लिए पञ्च महायज्ञ किया जाता है। मनु ने कहा है कि—

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा,
नृयज्ञं पितृयज्ञञ्च यथाशक्ति न हापयेत्।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम्,
होमोदैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।
स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि
पितृन् श्राद्धैश्च नृपन्नै भूतानि बलि कर्मणा॥

अर्थात् ऋषि यज्ञ, देवयज्ञ, भूत यज्ञ, नृयज्ञ और पितृ यज्ञ को गृहस्थ न छोड़े। पढ़ाना ब्रह्म यज्ञ, माता-पिता की सेवा करना पितृ यज्ञ, अग्नि होत्र देव यज्ञ, प्राणियों को भोजन देना भूत यज्ञ और अतिथि सेवा नृयज्ञ कहलाता है। यज्ञोपवीत इस क्रिया का प्रतीक है। यज्ञोपवीत का तीन सूत्र तीन ऋण तीन आश्रम और पांच गांठ पञ्च महायज्ञ का परिचायक है। इन क्रियाओं का सम्पादन करना ही गृहस्थाश्रम का उद्येश्य और कर्त्तव्य है।

वानप्रस्थ–यह आश्रम ५१ वर्ष की अवस्था से ७५ वर्ष तक की अवस्था का है। आज हम जिसे अवसर प्राप्त (Retired) जीवन कहते हैं उसे ही वानप्रस्थ कह सकते हैं। वानप्रस्थ का अर्थ होता है जनता की सेवा करना। वनुधातु का अर्थ सेवा करना होता है और उससे निःसृत वान का अर्थ सेवा होता है। इसमें सांसारिक विषयों की ओर से प्रवृत्ति हटाकर विश्व सेवा को ओर लगना ही इस आश्रम का उद्येश्य है। इस आश्रम के अधिकारी को गृह-त्याग करना पड़ता है।

सन्यासाश्रम—यह आश्रम ७५ वर्ष की अवस्था के पश्चात् का है। इस आश्रम में दैहिक कर्मों का अवसान करके केवल ज्ञान-कर्म में ही रत रहना पड़ता है। उसका जीवन भिक्षा पर आश्रित है। शास्त्रकार कहते हैं कि सब लोगों के भोजन के पश्चात् सन्यासी गृहस्थ के द्वार पर जाकर भिक्षा-याचना करे। नहीं मिलने पर उसे अप्रसन्न भी नहीं होना चाहिए। वह ज्ञान का प्रसार करे और प्रजा में सदाचार का उपदेश दे। वह समस्त संसार के प्राणियों से प्रेम पूर्वक व्यवहार करे और किसी के प्रति राग द्वेष की प्रवृत्ति न रखे।

मानवी जीवन का यही विभाजन ऋषियों ने पुरातन काल में बनाया था परन्तु जहाँ पर शनैः शनैः अन्य धार्मिक विधियों का ह्रास हुआ वहाँ पर हिन्दुओं की वर्णाश्रम व्यवस्था भी लुप्त हो गयी। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस प्रथा का पुनरुद्धार करके इसे क्रियात्मक करने पर बल दिया।

स्त्री शिक्षा—भारतीय विचार-धारा में स्त्रियों का स्थान पुरुषों की अपेक्षा अधिकार की दृष्टि से न्यून नहीं है। मनु ने लिखा है कि—जहाँपर स्त्रियों की प्रतिष्ठा होती है वहाँ देवता-गण निवास करते हैं। जिस कुल में स्त्रियाँ चिन्तित रहती हैं वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। इस प्रकार मनु ने स्त्रियों के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शन किया है। हिन्दू-मर्यादा नारी-जाति को प्रमुख स्थान प्रदान करता है। संसार में इस समय तीन बल हैं—धन बल, शस्त्र बल और विद्या बल। इन तीनों बलों की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती समझी जाती हैं। हिन्दू महेश्वर को अर्ध नारीश्वर कहते हैं, जिसका तात्पर्य है कि दो शक्तियों के द्वारा जिन्हें हम स्त्री और पुरुष कहते हैं। इस सृष्टि का विकास हुआ है। स्त्रियाँ पुरुषों की अर्धाङ्गिनी

हैं, दोनों का समानाधिकार है। इसी तात्पर्य से शास्त्रकार का आदेश है कि बिना सपत्नीक यज्ञ-क्रिया की सिद्धि नहीं होती है। पुरातन काल में जब कि भारत का अभ्युत्थान का युग था, स्त्रियाँ युद्ध विद्या, अध्यात्म विद्या और आयुर्वेद विद्यादि शास्त्रों में निपुण होती थीं। राजा दशरथ की धर्मपत्नी कैकयी का युद्ध में भाग लेने की कथा रामायण में प्रसिद्ध ही है। गार्गी, मैत्रेयी और कत्यायनी आध्यात्म विद्या में पण्डिता थीं। इसी प्रकार सुलभा आदि हजारों स्त्रियों की निपुणता की बातें संस्कृत-साहित्य में विद्यमान हैं। जब भारतीय पतन का युग आया तो स्त्रियों की उपेक्षा भी होने लगी। स्त्रियों को शुद्रा की उपाधि से विभूषित किया गया। भगवान् गौतम बुद्ध ने भी संघ में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित ठहराया। आनन्द के अधिक आग्रह करने पर भगवान् बुद्ध ने प्रजापती गौतमी को प्रव्रजित होने का आदेश दिया किन्तु उन्होंने कहा—

आनन्द! यदि तथागत प्रवेदित धर्म विनय में स्त्रियों के प्रव्रज्या न पातीं तो यह ब्रह्म चर्य चिरस्थायी होता, सद्धर्म सहा-चर्य तक ठहरता परन्तु आनन्द, चूँकि स्त्रियाँ प्रव्रजित हुईं अतः अब ब्रह्मचर्य चिरस्थायी नहीं होगा। ब्रह्मचर्य पाँच सौ वर्ष तक ही ठहरेगा (बुद्धचर्या)। जैन शास्त्रों में तो लिखा है कि स्त्रियों को स्वर्ग प्राप्त ही नहीं हो सकता। शङ्कर, रामानुज तथा माध्व आदि आचार्यों ने भी इस ओर नाममात्र भी सुधार की दृष्टि से ध्यान नहीं दिया। फलतः आर्यावर्त का पतन अनुदिन होता रहा। कुछ कट्टर पन्थी हिन्दुओं ने यहाँ तक इतना फतवा निकाल दिया कि स्त्रियाँ वेद आदि शास्त्रों को सुन भी नहीं सकतीं। महर्षि दयानन्द ने अपना ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर आकृष्ट किया और बतलाया कि स्त्रियों के लिए

गुरुकुल स्थापित करो और उन्हें समस्त शास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान करो। आज उस महर्षि के अनुपम आन्दोलन का ही मधुर परिणाम है कि समस्त आर्यावर्त में नारी-जागृति का अमिट चिह्न दिखाई दे रहा है। श्रद्धेय पं० जवाहर लाल नेहरू ने अपनी प्रशस्त पुस्तक 'Discovries of India' में लिखा है कि स्वामी दयानन्द द्वारा संस्थापित आर्य समाज ने स्त्रियों में शिक्षा का अधिक प्रसार किया है। स्वामी दयानन्द के आन्दोलन के पूर्व हिन्दू स्त्रियाँ अपने विरुद्ध आदेशों को पढ़कर हिन्दू धर्म की तिलाञ्जलि दे ईसाईयत का जामा पहन रही थीं, परन्तु ऋषि के मिशन ने बतलाया कि जो सम्मानप्रद स्थान वेद में स्त्रियों का है वह बाईबिल और कुरान में नहीं। बाईबिल की पुरानी पुस्तक में लिखा है कि जिस समय खुदा ने आदम को पैदा किया उस समय उसे एक सहचरी की आवश्यकता भी हुई। अतः खुदा ने आदम की पसली से होवा की सृष्टि की। उक्त कथानक से ईसाइयों का विश्वास है कि स्त्रियाँ पुरुषों से पुरुषों के लिए ही बनाई गयीं। १२ वीं शताब्दी के काल में यूरोप में यह वाद-विवाद चल रहा था कि स्त्रियों में रूह (आत्मा) होती है कि नहीं। कुरान भी एक पति के लिए चार स्त्रियों तक को उचित ठहराया है। किन्तु वैदिक धर्म ही एक ऐसा उदार एवं मानवता से परिपूर्ण धर्म है जो कि स्त्रियों को पूर्ण अधिकार प्रदान करता है। यही भारतीय विचारधारा की समीचीनता का द्योतक है।

दलितोद्धार—प्राचीन भारतीय विचारधारा में अछूत का विधान नहीं मिलता है। हिन्दूशास्त्र यह स्वीकार नहीं करता कि मनुष्य भी अछूत होता है। वेद में लिखा है कि न कोई बड़ा है न कोई छोटा है, सब परस्पर एक भाई के समान हैं।

ऋग्वेद में लिखा है कि तुम्हारा विचार, कार्य और मन एक हो। इन वाक्यों में एकता का स्तुत्य संदेश दिया गया है। कहीं पर इस बात का उल्लेख नहीं मिलता कि मनुष्य भी अस्पृष्ट होता है। जहाँ पर कुरान यहूदी और ईसाइयों के लिए कटु बचन का प्रयोग करता है एवं बाईबिल कनान के लोगों को कुत्ता बतलाता है वहाँ पर वेद किसी भी रूप, रंग या देश को आधार मानकर कोई भी विभाग नहीं करता। यही भारतीय विचार-धारा की विशेषता है। मध्य में पौराणिक पण्डितों ने इसमें अपना सिद्धान्त घुसेड़ना आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप भारत की एक बहुत बड़ी जनसंख्या के व्यक्ति अछूत कहलाने लगे और बन में रहने वाली जातियाँ अनार्य नाम से व्यवहृत होने लगी। अनेक सुधारकों ने इस ओर ध्यान दिया किन्तु सफलता भी प्राप्त नहीं हो सकी। आज विश्वबन्द्य महात्मा गान्धी भी इस ओर अपना ध्यान लगाए हुए हैं। उन्होंने दलित वर्ग का नाम 'हरिजन' रखा है। आपने बहुत कुछ प्रयत्न उनके सुधार के लिए किया है और आज भी कर रहे हैं। एक 'हरिजन सेवक' नाम की संस्था भी हरिजनों के उद्धार के लिए प्रयत्न कर रही है परन्तु चप्पल बनवाने और चमड़ा सिझाना सिखलाने के अतिरिक्त और कोई महत्त्वपूर्ण उत्थान का काम नहीं हो सका। गान्धी जी ने हरिजन नाम रखा है परन्तु इसका कोई महत्त्व नहीं है। नाम परिवर्त्तन से वस्तु में परिवर्त्तन नहीं होता। ऋषि दयानन्द का आन्दोलन इसकी अपेक्षा विलक्षण था। वे कहते थे कि कोई भी व्यक्ति किसी वंश का उत्पन्न हुआ हो अपने कर्त्तव्यानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य आदि हो सकता है। यही कारण है कि आज सैकड़ों हरिजन शास्त्री

और आचार्य हो आर्य समाज में पुरोहिताई का कार्य सम्पादित कर रहे हैं; जिन्हें कोई जानता भी नहीं कि वे जन्म के हरिजन हैं। क्योंकि आर्य समाज जन्मजात व्यवस्था का मूलोच्छेदन करना चाहता है। यह छुआछूत एक ऐसा भीषण महारोग है जो कि जाति को गर्त्त में गिरा रहा है। इस रोग का बिना उच्छेदन हुए कोई भी उत्तम योजना सफली-भूत नहीं हो सकती है। अतः भारतीय नवयुवकों को ऋषि के इस आदेश को मान कर जाति और उपजाति से अपना सम्बन्ध दूर रखना चाहिए।

बहुदेवतावाद—कुछ वैदेशिक विद्वानों का यह आक्षेप था कि हिन्दू बहुदेवतावादी थे। हाँ, यह उन लोगों का कहना उपयुक्त भी था, क्योंकि देवता शब्द का अर्थ देने वाला होता है। अतः अग्नि, वायु आदि देवता कहे जाते हैं। जिनकी संख्या ३३ है। वेदों में इनकी स्तुति (Dafination) चेतन मान कर नहीं किया गया है किन्तु अचेतन मानकर इनके गुणों का वर्णन किया गया है। जहाँ पर चेतन मान कर वर्णन किया गया है वहाँ पर उसका अर्थ मुख्य होता है न कि गौण।

वेद में केवल एक ही परमात्मा का वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में आता है कि 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ?' अर्थात् विद्वान् लोग एक ही परमात्मा का भिन्न भिन्न नाम बतलाते हैं। वह परमात्मा सृष्टि की उत्पत्ति करने से ब्रह्मा, पालन करने से विष्णु और संहार करने से रुद्र कहलाता है। जहाँ पर जिस शब्द की आवश्यकता होती है वहाँ पर उस शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिससे कि अभीष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति हो जाए।

महर्षि दयानन्द के पहले इस देश के भी अधिकांश विद्वान् भ्रम में थे। शैव और वैष्णव परस्पर में विवाद में रत रहते और कहते थे कि मेरा ईश्वर बड़ा है तो मेरा बड़ा है। स्वामी दयानन्द ने उसका परिहार किया, उन्हीं शब्दों में आप सुनें—

प्रश्न—वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं, उसका क्या अभिप्राय है ?

उत्तर—देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहलाते हैं। जैसे कि पृथ्वी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर का उपासनीय माना है। देखो इसी मन्त्र में कि जिसमें सब देवता स्थित हैं, वह जानने और उपासना के योग्य ईश्वर है। यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिए कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता न्यायाधीश अधिष्ठाता है। 'त्रयस्त्रिंशन्त्रिशता' इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं। इसकी व्याख्या शतपथ में की गयी है कि तैंतीसदेव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से वसु, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिए कहलाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तो रोदन करानेवाले होते हैं। सम्वत्सर के १२ महीने १२ आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते हैं। विद्युत का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि वह परमऐश्वर्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, वृष्टि, जल एवं ओषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्प विद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तैंतीस पूर्वोक्त गुणों के कारण से देव कहलाते हैं। इनका

स्वामी और सबसे बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवा उपास्य देव है शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये शास्त्रों को देखे होते तो अनेक ईश्वर मानने के भ्रमजाल में गिर कर क्यों कष्ट सहते।

(सत्यार्थ प्रकाश)

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन का उद्धार कर दिया। जाति के अन्तर्गत पुनर्जीवन का सञ्चार हो गया। हिन्दूजाति में यह भ्रम फैला हुआ था कि समुद्र-यात्रा करने से पाप होता है। जो कोई भारत से बाहर विदेश जाएगा उसका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। स्वामी दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज ने इस दूषित विचार को भारतीय-हृदय से दूर भगा दिया। जिसके फलस्वरूप परमहंस रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका आदि देशों में वेदान्त धर्म का उपदेश किया। उस उपदेश से सैकड़ों रामकृष्ण के भक्त बने। रामतीर्थ ने भी विदेश-यात्रा की और भारतीय विचारों का प्रचार करके वहाँ के हजारों नर-नारियों को सन्तुष्ट किया। आर्य-समाज के दर्जनों उपदेशक द्विनिडड डचगायना, ब्रिटिश गमना, बंकाक आदि देशों और उपदेशों में प्रचार करते हैं। विधर्मियों को स्वधर्म में दीक्षित करने की भावना भी आगयी। कितने हिन्दू जो कि मुस्लिम शासनकाल के असह्य अत्याचारों के कारण मुसलमान हो गये थे वे नवमुस्लिम कहलाते थे। उनका व्यवहार हिन्दुओं का सा था हाँ, केवल नाम-मात्र के लिए वे मुसलमान थे। उन्हें पुनः हिन्दू-धर्म में दीक्षित किया गया। इसी प्रकार लाखों मलकानें (राजपूत) एवं जाट आदि विभिन्न सम्प्रदाय (Sect) के राम-कृष्ण के भक्त हो गए।

एक बार मुस्लिम और ईसाई संसार में कोलाहल मच गया क्योंकि उनके सतत प्रयत्न से कुछ अल्पसंख्यक हिन्दू ही धर्मच्युत हुए थे परन्तु आर्य समाज के साधारण उद्योग से लाखों लौटकर निज जाति माता की गोद में चले आए। इससे चिढ़कर मुसलमान और ईसाई आर्य समाज को मुस्लिम, ईसाई विरोधी (Anti Muslim and anti Christian) घोषित करने लगे। आर्य समाज के प्रसिद्ध नेता श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, जिसे भारत का बच्चा बच्चा जानता है उनकी हत्या कर दी गयी। हत्या करने वाला एक साधारण बिना पढ़ा-लिखा हुआ मुसलमान था, जिसको किसी भी संस्था का कुछ भी ज्ञान नहीं था, उसने ही स्वामीजी की हत्या की। अदालत में उसने अपने को इस्लाम का सच्चा सेवक बताया। बहुत बड़े मुसलमानों ने उसकी पैरवी की और उसके लिए आर्थिक सहायता भी दी गयी। इस प्रकार धर्म प्रचार के क्षेत्र में आर्य समाज के दर्जनों व्यक्ति मारे गए परन्तु निर्भीक आर्य समाज ने अपना कार्य स्थगित नहीं किया। लेखराम, नाथूराम और राजपाल आदि की हत्यायें बहुत ही कायरता-पूर्ण हुईं। मारनेवाले अपने को कुरान का सच्चा अनुयायी सिद्ध करते थे तथापि यह सब होने पर भी आर्य समाज के कार्यकर्त्ताओं में किसी प्रकार के भय का संचार नहीं हुआ।

स्वामी जी के ५१ सिद्धान्त

(१) प्रथम 'ईश्वर' कि जिसके ब्रह्म परमात्मा आदि नाम हैं। जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा,

अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षण युक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

(२) चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर पुनीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य का प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षि के बनाए ग्रन्थ हैं, उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद-विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण मानता हूँ।

(३) जो पक्षपात रहित न्यायाचरण, सत्य भाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको 'धर्म' और जो पक्षपात सहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभङ्ग वेदविरुद्ध है उसको 'अधर्म' मानता हूँ।

(४) जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसीको 'जीव' मानता हूँ।

(५) जीव और ईश्वर स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य-व्यापक और साधर्म से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा। इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्ध युक्त मानता हूँ।

(६) 'अनादि पदार्थ' तीन हैं—एक ईश्वर, द्वितीय जीव,

तीसरा प्रकृति। अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं, उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

(७) 'प्रवाह से अनादि' जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं, वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।

(८) 'सृष्टि' उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्ति पूर्वक मेल होकर नाना रूप बनना।

(९) 'सृष्टि का प्रयोजन' यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किस लिए है? उसने कहा कि देखने के लिए। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी।

(१०) 'सृष्टि सकर्तृक' है इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है, क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का 'कर्त्ता' अवश्य है।

(११) 'बन्ध' सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है। जो जो पाप कर्म ईश्वर भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःसफल करने वाले हैं इसलिए यह 'बन्ध' है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है।

(१२) 'मुक्ति' अर्थात् सब दुःखों से छूट कर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना,

नियम समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना।

(१३) 'मुक्ति के साधन' ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

(१४) 'अर्थ' वह है जो धर्म से ही प्राप्त किया जाए और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं।

(१५) काम वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाए।

(१६) 'वर्णाश्रम' गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं।

(१७) 'राजा' उसी को कहते हैं जो शुभगुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपात रहित, न्यायधर्म की सेवा प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे।

(१८) 'प्रजा' उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते।

(१९) जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो 'न्यायकारी' है और उसको मैं भी ठीक मानता हूँ।

(२०) 'देव' विद्वानों को और अविद्वानों को 'असुर,' पापियों को 'राक्षस,' अनाचारियों को 'पिशाच' मानता हूँ।

(२१) उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत

पति का सत्कार करना 'देवपूजा' कहाती है। इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूं।

(२२) 'शिक्षा' जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।

(२३) पुराण जो ब्रह्मादि के बनाए ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा, नाराशंसी नाम से मानता हूँ अन्य भागवतादि को नहीं।

(२४) 'तीर्थ' जिससे दुःखसागर से पार उतरे कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्सँग, यमादि योगाभ्यास, पुरुषार्थ विद्यादानादि शुभकर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूं, इतर जलस्थलादि को नहीं।

(२५) 'पुरुषार्थ' प्रारब्ध से बड़ा इसलिए है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते हैं जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है।

(२६) मनुष्य को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख-दुःख, हानि-लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ।

(२७) 'संस्कार' उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे, वह निषेकादि श्मशान्त सोलह प्रकार का है, इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक् के लिए कुछ भी नहीं करना चाहिए।

(२८) 'यज्ञ' उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों का दान अग्नि

होत्रादि जिनसे वायु 'वृष्टि, जल, ओषधि की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुँचाना है। उसको उत्तम समझता हूं।

(२९) जैसे 'आर्य' श्रेष्ठ और 'दस्यु' दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

(३०) 'आर्यावर्त' देश इस भूमि का नाम इसलिए है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य लोग निवास करते हैं, परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको 'आर्यावर्त' कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं।

(३१) जो साङ्गोपाङ्ग वेद-विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह आचार्य कहलाता है।

(३२) 'शिष्य' उसको कहते हैं कि जो सत्य-शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य, धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है।

(३३) 'गुरु' माता पिता और जो सत्य को ग्रहण करा के और असत्य को छुड़ावे वह भी 'गुरु' कहलाता है।

(३४) 'पुरोहित' जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

(३५) 'उपाध्याय' जो वेदों का एक देश वा अङ्गों को पढ़ता है।

(३६) 'शिष्टाचार' जो धर्माचरण पूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करना यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहलाता है।

(३७) प्रत्यक्षादि आठ 'प्रमाणों' को भी मानता हूं।

(३८) 'आप्त' जो यथार्थ वक्ता, धर्मात्मा सब के सुख के लिए प्रयत्न करता है उसी को 'आप्त' कहता हूँ।

(३९) 'परीक्षा' पाँच प्रकार की है इसमें से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टि क्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पाँचवी अपने आत्मा की पवित्रता विद्या इन पाँच परीक्षाओं से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिए।

(४०) 'परोपकार' जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूं।

(४१) 'स्वतन्त्र' 'परतन्त्र' जीव अपने कामों स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है।

(४२) 'स्वर्ग' नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

(४३) 'नरक' जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

(४४) 'जन्म' जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर, और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ।

(४५) शरीर के संयोग का नाम 'जन्म' और वियोग मात्र को 'मृत्यु' कहते हैं।

(४६) 'विवाह' जो नियम पूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणि-ग्रहण करना वह विवाह कहाता है।

(४७) 'नियोग' विवाह के पश्चात् पति के मरजाने आदि

वियोग में अथवा नपुंसकतादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।

(४८) 'स्तुति' गुणकीर्तन, श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं।

(४९) 'प्रार्थना' अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिए ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

(५०) 'उपासना' जैसे ईश्वर के गुण कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जानके ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है, ऐसा निश्चय, योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

(५१) 'सगुणनिर्गुण स्तुतिप्रार्थनोपासना' जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो जो नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति, शुभगुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिए परमात्मा का सहाय चाहना, सगुण निर्गुण प्रार्थना और एक गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुण निर्गुणोपासना होती है।

आर्य समाज के नियम

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्,

न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्व व्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अनभ, नि", पवित्र और सृष्टि कर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

(४) सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्येश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालनेमें परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

उपसंहार—भारतीय विचारों की शृङ्खला सर्वदा प्रगति शील रही है। जो जो महापुरुष आए उन्होंने अपने भव्य विचारों से हिन्दू धर्म के भंडार को भरना चाहा। इस प्रकार ज्ञानोपार्जन में भारत सर्वदा सजग रहा परन्तु अन्य देशों के इतिहास देखने से विदित होता है कि प्राचीन काल में जब किसी देश के

महापुरुष सुधारों का आन्दोलन चलाते थे तो वहाँ की जनता उनके विरुद्ध हो उनकी हत्या तक भी कर डालती थी। सुकरात ब्रूनो तथा मन्सूर आदि ज्वलन्त प्रमाण हैं। इनके अतिरिक्त मार्टिन लूथर के अनुयायियों तथा रोमन कैथोलिक पादरियों के झगड़े इतिहास प्रसिद्ध ही हैं कि किस प्रकार निर्दयता के साथ प्रोटेस्टैण्टों की हत्या की जाती थी। भारत कभी भी इस प्रकार की हत्याओं के कलङ्क का भागी नहीं बना। यहाँ पर अनात्मवादी और भौतिकवादी चारवाक महात्मा कोटि में गिने जाते हैं। आज की सनातनी दुनिया बुद्ध को ईश्वर का अवतार समझती है। अनेक सम्प्रदाय होते हुए भी परस्पर एकता है। एक के विचारों का विरोध तर्क से किया जाता है न कि तलवार की तीक्ष्ण धारा से। इसी उदात्त उदारता का परिणाम है कि प्राचीन भारत प्रत्येक दिशा में उन्नत था। जहाँ पर इसकी आध्यात्मिक धारा अगाध थी वहाँ पर भौतिक विज्ञान की उन्नति भी किसी प्रकार न्यून नहीं थी। गणित, रसायन, ज्योतिष तथा आयुर्वेद आदि शास्त्र चरम कोटि पर पहुँचे हुए थे। समुद्र यात्रा के लिए नौका संचालन में आर्य संसार के गुरु थे। यहाँ की वस्तुकला, नाट्यकला तथा चित्रकला आदि के सम्बन्ध में कहना ही क्या है। जिसने अजन्ता की चित्रकारी और अलीफेन्य की खुदाई अपनी आँखों से देखी होगी वे सहज में ही भारतीय-चित्र-कला की महत्ता समझ सकते हैं। वस्त्र-वपन कला में भारतीय इतने प्रवीण थे कि यहाँ के बने हुए वस्त्रों के आयात को रोकने वाले वैदेशिक गवर्नमेण्ट को कानून बनाना पड़ा। कुछ लोगों का यह कहना है कि भारत वैज्ञानिक उन्नति में यूरोप से पीछे रहा है। इसका कारण यह है कि यह अपनी परतन्त्रता के पाश को काटने के लिए बाहरी

आक्रमण कारियों से एक हजार वर्षों से लड़ता आ रहा है। जब इसकी उन्नति का युग था तब यह प्रत्येक प्रकार के वैभव से परिपूर्ण था और समस्त संसार का अन्नदाता था किन्तु कुटिल काल चक्र के प्रभाव से धनादि वैभव के अभिमान में विलास पूर्ण बनकर यह भारत सर्वस्व लुटा कर आज सारे संसार का भिखारी बना हुआ है। जो कभी कहा करता था कि 'मा याचिक किञ्चन' अर्थात् हम किसी से कुछ नहीं माँगे, वही आज अन्न और वस्त्र के अभाव में ससार के सामने हाथ पसारे हुए है। लाखों व्यक्ति भूख की भीषण ज्वाला से काल के गाल में कवलित हो गए और करोड़ों की अवस्था चिन्तनीय हो रहं है। तब भी आलोक की रेखा दिखाई पड़ रही है। समय समय पर आए हुए महात्माओं के उपदेशों का प्रभाव दृष्टिगत हो रहा है। चारों ओर नव जीवन का संचार दिख रहा है। क्या बंगाली और क्या मद्रासी सब गले से गले मिल रहे हैं। कोल, भील, मुण्डा, उराँव एवं संथाल आदि सबों में सुधार की भावना आ गई। सामाजिक रूढ़ियों का दिवाला होता जा रहा है, जन्मजात के ढकोसला रखने वाले नीचे पड़ गए हैं एवं 'सर्वत्र संगच्छध्वं संवदध्वम्' एक साथ चलो, तक साथ बोलो की आवाज सुनाई पड़ रही है। नव युवकों के अन्तर्गत प्रतिक्रिया की भावना अपने शत्रुओं के प्रति आग के समान भड़क उठी है। अब हिन्दू जाति को कोई ठग नहीं सकता। भारत में पूर्ण जागरुकता आ गयी है। निश्चय ही इसका सारा श्रेय महर्षि दयानन्द सरस्वती को प्राप्त है। उनके पहले जितने महापुरुष आए, उन्होंने भारत के एक अङ्ग की त्रुटि को लेकर ही अपना कार्य क्रम चलाया। अनेकों का तो पूरा समय एकान्त स्थित योग साधन और आध्यात्मिक

विचार धारा में ही व्यतीत हुआ। परन्तु महर्षि दयानन्द के जीवन में दोनों बातें पायी जाती हैं। एक ओर जहाँ वे एकान्त स्थित होकर १८ घंटों की समाधि लगाते थे, भगवान् के भजन में मस्त रहते थे और वेद उपनिषदों के भाष्य में ध्यानमग्न रहते थे वहाँ वे दूसरी ओर भारत के राजनैतिक पतन को देखकर चार आँसू बहाते थे। इस प्रकार उनके भीतर क्रान्ति और शान्ति का समावेश पाया जाता है। अतएव निःसन्देह उनका कार्य सर्वतोन्मुखीन हुआ। स्वराज्य शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम स्वामी दयानन्द के ही धर्म कोश सत्यार्थ प्रकाश में मिलता है जिसके पश्चात् दादा भाई नौरेजी ने कांग्रेस में जीवन का संचार किया। वे सामाजिक दृष्टि से परिपूर्ण थे। उनके सुधार का आन्दोलन संसार के पाखण्डियों के विरोध में था। वे अपने विरोधी को तृण के समान भी नहीं समझते थे, उनका कहना था कि 'निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वास्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशातु गच्छतु वा यथेष्टम्,' अर्थात् कोई निन्दा या स्तुति करे, सम्पत्ति आये या जाये एवं आज ही मृत्यु हो जाए अथवा अमरता मिले किन्तु बुद्धिमान् लोग न्याय पथ से विचलित नहीं होते हैं अतः उन्होंने भारतीय विचारों का काया-कल्प सा कर दिया। अतीत भारतीय संस्कृति पुनः जागृत हो गयी और आज अखिल विश्व जिसके विचारों से प्रभावित हो गया है क्योंकि ऋषि ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक विचार-धारा का समन्वय कर दिया है।

———

परिशिष्ट

भारत और ईसाई धर्म

इसमें संदेह नहीं कि ईसाई धर्म के उपर भारतीय विचारों का छाप पड़ा हुआ है। क्योंकि जिस समय महात्मा ईसा का जन्म हुआ था उस समय बौद्ध प्रचारक विश्व के कोने २ में पहुँच गये थे। चीन, जापान, खोतन, लङ्का और तिब्बत आदि देशों में बौद्ध प्रचारक धूमधाम से अपना प्रचार करते थे। कहते हैं कि बौद्ध प्रचारकों के जीवन और उपदेशों का प्रभाव पड़ा। यही कारण है उन्होंने अपने धार्मिक आन्दोलन में बौद्ध भिक्षुओं के समान जीवन व्यतीत करने का आदेश अपने शिष्यों के लिये दिया। भगवान् बुद्ध और मसीहा के उपदेशों की तुलना की जाती है तो बुद्ध के उपदेशों का भावार्थ ही नहीं अपितु वाक्यों का अक्षरशः अनुवाद मिलता है। नीचे कुछ वाक्य उद्धृत किये जाते हैं जिससे पाठकों का स्पष्ट विदित हो जायेगा। ये उन दोनों के अनुयायियों द्वारा संग्रह ग्रन्थों से लिया गया है।

बौद्ध ग्रन्थ—भगवान् बुद्ध का जन्म मायादेवी के गर्भ से हुआ। जन्म का कारण दैवी कृपा थी।

ईसाई—महात्मा ईसा का जन्म कुमारी मेरी के गर्भ से हुआ दैवी प्रेरणा थी, मानवी सम्बन्ध कुछ भी नहीं था।

बौद्ध ग्रन्थ—जिस समय भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ, आकाश में देवताओं ने प्रदर्शन किया, शुभ नक्षत्र दिखाई पड़े।

ईसाई—जिस समय ईसा का जन्म हुआ, आकाश में शुभ नक्षत्र दिखाई पड़े।

बौद्ध ग्रन्थ—जिस समय भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ तब विद्वानों ने निरीक्षण किया और बताया कि यह बालक दैवी पुरुष का अवतार है।

ईसाई—ईसा के जन्म समय बहुत महापुरुष आकर कहे कि इन में सम्पूर्ण दैवी लक्षण उपस्थित हैं।

बौद्ध ग्रन्थ—जब भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ वे अपनी माँ से कहे कि माँ! मैं मनुष्यों में महापुरुष जन्म लिया हूँ।

ईसाई ग्रन्थ—जब ईसा बाल्यावस्था में थे उन्होंने अपनी माता से कहाः—मैं जेसस क्राईष्ट खुदा का बेटा हूँ।

बौद्ध ग्रन्थ—भगवान् बुद्ध जब पाठशाला में पढ़ने गये उनके अध्यापक आश्चर्यमय हो गये कि इतनी अल्प अवस्था में इसने सम्पूर्ण विषयों की जानकारी प्राप्त कर ली है।

ईसाई—जब मसीहा स्कूल में पढ़ने गये लोगों को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि ये अपने गुरु से भी अधिक विषयज्ञ हैं।

बौद्ध ग्रन्थ—जब भगवान् बुद्ध १२ वर्ष के हुये मन्दिर में उनसे लोगों ने बहुत कठिन प्रश्न किये, जिनका उचित उत्तर भगवान् बुद्ध ने दिया।

ईसाई—जब ईसा १२ साल के हुये तब इस्मायल के बंशजों ने उनसे बहुत प्रश्न पूछे जिसका उचित उत्तर मसीहा ने दिया।

बौद्ध ग्रन्थः—जब भगवान् बुद्ध तपस्या रत हुये काम-देव ने (मार) विचलित करने की चेष्टा किया।

ईसाई ग्रंथ—जब ममीहा प्रचार कार्य में संलग्न हुये तब शैतान उनको बहकाने लगा।

बौद्ध ग्रन्थः—भगवान् बुद्ध ने काम की परवाह कुछ भी नहीं की, वरन्, और दूर हट जाने की कहा।

ईसाई—जेसस क्राईष्ट ने शैतान की बातों का कुछ भी विचार न कर कहा कि तुम मेरे पिछे हट जावो।

बौद्ध ग्रन्थ—भगवान् बुद्ध ने तपस्या में बहुत दिनों तक उपवास किये।

ईसाई—मसीहा ४० दिन और रात उपवास किये।

बौद्ध ग्रन्थ—भगवान् बुद्ध की प्रार्थना में उनके अनुयायी कहते हैं कि नाम से स्वर्ग सुख मिलता है।

ईसाई—ईसा के नामों से प्रार्थना करने पर वहिश्त मिलेगा।

बौद्ध ग्रन्थ—भगवान् बुद्ध पृथ्वी पर पुनः आने वाले हैं संसार को तब आनन्द होगा।

ईसाई—मसीहा इस पृथ्वी पर आखिरी दिन आयेगा अपने संसार को आज्ञा और आनन्द में रखेगा।

बौद्ध—भगवान् बुद्ध मृत व्यक्ति थे, विक्षोभ कहा।

ईसाई—मसीहा क़यामत के दिन मृत व्यक्तियों के जज होंगें।

बौद्ध—भगवान् बुद्ध प्राचीन उपदेशकों के उपदेशों को नष्ट करने के लिए नहीं आये अपितु उसे पूरा करने के लिए आए हैं।

ईसाई—मसीहा ने कहा—यह मत सोचो कि मैं पुराने नबियों की बात नष्ट करने आया हूँ किन्तु उसे पूर्ण करने आया हूँ।

बौद्ध ग्रन्थ—एक दिन की घटना है कि भगवान् बुद्ध के प्रिय शिष्य आनन्द कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्हें प्यास लगी। वे कुआँ पर पानी लेने गए। मातङ्गी नाम की एक चण्डाल कन्या पानी भर रही थी। आनन्द ने उससे पानी मांगा। उसने कहा कि महाराज, मैं चण्डाल कन्या हूँ। आनन्द ने कहा कि मुझे पानी चाहिए। मैं तुमसे जाति नहीं पूछता। तब वह शीघ्र ही बुद्ध धर्म में दीक्षित हो गयी।

ईसाई—एक दिन मसीहा बहुत दूर चल कर सामरी शहर में आए। वे अपनी यात्रा से बहुत थके थे। उन्होंने कुआँ पर पानी भरने वाली एक स्त्री से पानी मांगा स्त्री ने कहा कि तुम एक यहूदी होकर मुझसे पानी मांग रहे हो। मैं सामरी जाति की स्त्री हूं ईसा ने उत्तर दिया कि यहूदियों से सामरियों को अलग नहीं मानना चाहिए।

बौद्ध—हमारी सम्पूर्ण क्रियाओं का आदर्श यही होना चाहिए कि अपने पड़ोसियों के प्रति प्रेम और दया।

ईसाई—अपने शत्रुओं से प्रेम करो यदि वे तुम्हारा अहित करें। तुम दया करो जब वे तुमसे घृणा करें।

बौद्ध—भगवान् बुद्ध जब उपदेश करने के लिए प्रयाण किये तो सारनाथ में अधः श्रेणी के लोग उनके शिष्य हुए।

ईसाई—ईसा के प्रारम्भिक काल के उपदेश से चार मछली मारने वाले उनके शिष्य हुए। तत्पश्चात् अन्य व्यक्तियों ने यह धर्म स्वीकार किया।

बौद्ध—भगवान् बुद्ध ने कहा कि वही हमारा शिष्य हो सकता है जो संसार का तिरस्कार कर अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति गरीबों को बाँट कर साधुवेश धारण करे।

ईसाई—वही हमारा शिष्य है जो संसार का परित्याग कर गरीबों के हित में लगे।

बौद्ध—भगवान् बुद्ध का उद्येश्य था धर्म का राज्य स्थापित करना।

ईसा—इस संसार को स्वर्ग का राज्य बनाओ।

बौद्ध—बुद्ध ने कहा—एक ज्ञानी आदमी विवाहित जीवन का तिरस्कार करे अगर ब्रह्मचर्य जीवन को न निभा सके तो विवाह करे। व्यभिचार बहुत अनुचित है।

ईसा—मनुष्य के लिए यही भला है कि वह स्त्री का स्पर्श नहीं करे। अगर ऐसा जीवन व्यतीत नहीं कर सके तो उसे चाहिए कि वह विवाह करे। अपनी स्त्री को छोड़कर सारे स्त्री को दूर रखे और अपने पति को छोड़ सारे पति को दूर रखे।

बौद्ध ग्रन्थ—एक साधु एक गाँव में भिक्षा करने के लिए गया। उसकी दृष्टि एक सुन्दर स्त्री पर पड़ी। स्त्री को देख कर वह अस्थिर हो गया और उसका विचार दूषित हो गया। उसने अपने को सम्भाला और अपनी आँख फोड़ डाली।

ईसा—अगर तुम्हारी दाहिनी आँख अपराध करे तो बाहर निकाल कर फेंक दो।

बौद्ध—जब भगवान् बुद्ध कुन्तक घोड़ा पर चढ़ कर नगर का पर्यटन करते थे, उनका पथ फूलों से भर गया, क्योंकि देवता लोग फूलों की वृष्टि कर रहे थे।

ईसा—जब मसीहा जेरुशलम में प्रवेश कर रहे थे तो उनका पथ खजूरों की डालियों से आकीर्ण था, जिसे भीड़ ने सजाया था।

कुछ लोगों को तो अब मसीहा के होने में भी सन्देह होने लगा है क्योंकि उनके सम्बन्ध की अन्यान्य घटनायें भी असम्भव प्रतीत होती हैं। स्वयं मत्ती एवं लूक आदि की बातें परस्पर विरोध की बातें जन्म के सम्बन्ध में पायी जाती हैं। मृत्यु की घटना, पुनः जी कर उठ जाना आदि बातें मानव मस्तिष्क को आज भी चक्कर में डाल रही हैं। जो हो, मुझे इन बातों की परीक्षा यहाँ नहीं करनी है। मुझे तो भारत से ईसाइयत का कितना सम्बन्ध है, यही घोषित करना है। यद्यपि उपदेश में तुलना है किन्तु आचारिक बातें वैसी ही हैं जैसी कि यहूदियों में पायी जाती हैं।

भारत में प्रवेश—भारत में ईसाई धर्म किस प्रकार प्रवेश किया इसका पूरा पूरा इतिहास अभी नहीं मिलता है। कहते हैं कि सबसे पहले १५४१ ई० में गोआ के नये वायसराय के साथ फैंसिस एक्जीवर आए, उनमें ईसाइयत के प्रचार का बहुत जोश था। कहा जाता है कि उन्होंने १ हजार गैर ईसाइयों को ईसाई बना लिया। उनकी सफलता स्तुत्य थी, इसे कौन स्वीकार नहीं कर सकता? उनके पश्चात् रावर्ट डीनाबली का १७७८ में यहाँ आगमन हुआ। इन्होंने ईसा के उपदेशों से काम न लेकर धोखा से काम लिया और काश्मीरी ब्राह्मण बन कर बाइबिल, पुराण और अन्य ग्रन्थ सम्मिलित कर एक पुस्तक लिखवाई और जिसका नाम यजुर्वेद रखा। फ्रेंच भाषा में इसका अनुवाद भी कराया। विदेशी उसे ही वेद समझने लगे। अन्त में भण्डाफोड़ हो गया और इस पुस्तक का प्रचार नहीं हो

हो सका किन्तु रावर्ट हीनोविली की वह चाल सफलीभूत हो गयी। जिसके द्वारा वे मद्रास प्रान्त में बहुत बड़ी संख्या को ईसाई बनाने में सफल रहे। रावर्ट हीनोविलि ने हिन्दुओं के अन्दर प्रचलित छुआछूत को देखा कि हिन्दू लोग किसी का छुआ हुआ नहीं खाते हैं। भूल से खा लेने पर भी जाति से च्युत कर दिया जाता है। उसने भी काश्मीरी ब्राह्मण बन कर कुछ लोगों को अपना उच्छिष्ट एवं स्पृष्ट अन्न खिलाया पश्चात् अपने को पादरी घोषित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि एक बहुत बड़ी संख्या ईसाइयत की गोद में चली गयी। यदि उस समय महर्षि दयानन्द का ही जन्म हो गया होता अथवा आर्य समाज रहता तो कदापि हिन्दुओं को ये दिन देखने को न मिलते। अस्तु, लोग आज भी ईसाई बन रहे हैं और उसका कारण वही है जो कि पहले इस हिन्दू जाति के अन्तर्गत उपस्थित था। जात-पाँत का भूत तथा पराधीनता ईसाइयत के फैलाने का हेतु है।

ईसाई प्रचारक इस देश की निर्धनता और मूर्खता से लाभ उठाते हैं और भारतीयों को प्रलोभन देकर अपने धर्म में दीक्षित करते हैं। आज तक ईसाई प्रचारक भारतीय बुद्धि-जीवि समाज को अपना नहीं सका। इनका प्रचार रांची के मुण्डा,उराँव और संथाल प्रगना के संथालियों में विशेष है। फायर एलेविन ने इन ईसाई प्रचारकों का भण्डाफोड़ किया है। यद्यपि वे ईसाई हैं परन्तु उनमें मानवता छिपी है। उन्होंने लिखा है कि ये ईसाई गोण्ड, भील और संथाल आदि जातियों में काम करते हैं। इन्हें रुपया आदि का प्रलोभन देकर अपने.धर्म में दीक्षित करते हैं। जो ईसाई नहीं बनता उसे अनेक बिघ्न बाधाओं का सामना करना पड़ता है। रांची

के सिमडेंगा सब डिवीजन में इसका प्रबल प्रमाण प्राप्त होता है।

ईसाई भारत के भीतर स्कूल, कालेज और औषधालय आदि साधनों के द्वारा कार्य करते हैं तथापि सब के पीछे यही मनोवृत्ति छिपी हुई है कि किस प्रकार भारतीयों को ईसाइयत के चँगुल में फँसाया जाय। ईसाई होने पर भारतीय अपनी सुखद संस्कृति और प्यारे धर्म से वञ्चित हो जाते हैं। उनका पवित्र आचारिक जीवन नष्ट हो जाता है, जो हिन्दू धर्म की विशेषता है। आप ईसाई समाज में नैतिक पतन और ······ की अधिकता पायेगें। साथ ही साथ हिन्दुस्तान में फूट डाल कर उस पर शासन करना ही विदेशियों का प्रयोजन है। अतः आर्य समाज इससे बड़ा सतर्क रहता है। यद्यपि ईसाई प्रचारकों के पंख जल गए। आज जहां पर वैदिक धर्म का पर्याप्त प्रकाश है वहां पर खद्योत और मोमबत्ती से काम नहीं चल सकता। अन्धकार में ही खद्योत चमकते हैं। तथापि हिन्दुओं को जगा कर एकता का सन्देश सुनाना है। बेद की दृष्टि में न तो कोई छोटा है न कोई बड़ा। ऋग्वेद में कहा भी गया है—अजेष्ठासो अनिष्कास एते संभ्रातरो वा वृधुः सौभगाय।

भारत **और मुसलमान**—अरब जाति का भारत से पुरातन सम्बन्ध है। अरब के लोगों पर मुहम्मद की शिक्षाओं का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा। मुहम्मद ने अरबियों के जीवन को परिवर्तित कर दिया। मुहम्मद के अरबी लोग प्रकृति से शान्त और व्यापारी थे। उनमें सामाजिक कुरीतियाँ भी थीं, जैसा कि अन्य देशों में देखा जाता है। शिक्षा का प्रचार भी न्यून था। मुहम्मद ने

इस शिक्षा से लाभ उठाया और अपने को पैगम्बर घोषित किया। वहाँ की जाति को नया मजहबी सुरा पिला कर मूर्त्ति पूजकों के विरुद्ध उभाड़ा। परिणामतः इधर उधर लूट पाट होने लगी। लूट का धन मुहम्मद अपने सैनिकों में बाँट देते थे। अविश्वासियों को मारना धर्म और स्वर्ग का फलाधिकारी बताया गया। कुरानी बहिश्त भी विचित्र ही है। कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति वैसे स्वर्ग को व्यभिचार का अड्डा छोड़ कर दूसरा कुछ भी नहीं बतला सकता। इसके प्रवर्तक के जीवन का पता भी चलता है कि उसमें कितनी सदाचारिता थी। एच० जी० वेल्स ने अपनी पुस्तक में मुहम्मद के लिए 'मंकार और मानव जाति का शत्रु' ऐसा बिशेषण प्रदान किया है। जो भी हो किन्तु एक बार इस्लाम ने समस्त देश की सभ्यता को विपत्ति ग्रस्त बना दिया, भारत भी उससे अछूता नहीं बचा। भारत पर मुसलमानों के आक्रमण का उद्देश्य इस पवित्र देश को मुसलमान बनाना था। उस समय हिन्दू असंगठित थे। पारस्परिक युद्ध और आन्तरिक साम्प्रदायिक अनुचित विचारों से भारत कई भागों में विभक्त था। जात-पांत और अहिंसा की नीति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी थी। इन बातों से विधर्मियों ने लाभ उठाया। प्रथम आक्रमण मुहम्मद गजनवी का सिन्ध पर हुआ। सिन्ध का राजा दाहिर ने सामना किया किन्तु अनुशासन-प्रियता और एकता नहीं होने से हिन्दुओं की हार हुई। इस प्रकार हिन्दू राजा क्रमशः पराजित होने लगे। मुहम्मद का आक्रमण हिन्दुस्तान पर १७ बार हुआ। लाखों आदमी मारे गए और हजारों गुलाम बना कर गजनी के बाज़ारों में बेंच दिए गए। करोड़ों की सम्पत्ति लूट ली गयी और सोमनाथ का विशाल भव्य मन्दिर तोड़ कर

मिट्टी में मिला दिया गया। मथुरा की पवित्र नगरी अपवित्र कर दी गयी। भारत वर्ष को मुहम्मद के आक्रमणों से अपार क्षति उठानी पड़ी। तथापि हिन्दुओं ने अपनेको नहीं सँभाला। अन्त में जयचन्द के बुलाने पर मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। प्रथम तो इसकी हार हुई परन्तु दूसरी बार पुनः तैयार होकर आया। पृथ्वीराज हार गए और दिल्ली की गद्दी विधर्मियों के हाथ चली गयी। मुसलमानों में क्रमशः एक के बाद दूसरे वंश वाले आए परन्तु पारस्परिक वैमनस्य के कारण राज्य-भार को न चला सके। गुलाम वंशी मुसलमान शासकों में रजिया बेगम का नाम उल्लेखनीय है जो देहली की गद्दी पर बैठकर राज्य का संचालन करती थी। किन्तु अन्त में बेचारी एक हबशी गुलाम के प्रेम में वशीभूत हो गयी और राज्य कर्मचारियों द्वारा मार डाली गयी।

पश्चात् बाबर ने भारतपर चढ़ाई की और इब्राहीम लोदी को हटाकर दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ। महाराणा ने उसका सामना किया परन्तु फलित ज्योतिषियों के फेर में पड़ कर राणा कर्त्तव्यच्युत हो गए। अतः वही हुआ जो पहले हुआ था। बाबर से लेकर औरंगजेब तक मुगल साम्राज्य बढ़ता ही गया। राणा प्रताप आदि प्रातः स्मरणीय पुरुषों ने इस विपत्ति-काल में हिन्दू जाति की शान बचाई। हल्दी घाटी का भीषण संघर्ष उस नररत्न के जीवन का उज्ज्वल इतिहास है। जिसमें केसरिया बाना बाँध कर मुट्ठी भर राजपूत योद्धाओं ने लाखों मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए थे। उस राज्य में अकबर का बेटा जहाँगीर हाथी पर सवार होकर लड़ रहा था। राणा प्रताप शत्रु दल का संहार करते हुए आ रहे थे. और उन्होंने पूछा कि बताओ—इस सेना का सेनापति कौन है? जहाँगीर ने

अपने महावत को हाथी आगे बढ़ाने के लिए कहा और बोला कि मैं आज इस काफिर को मार कर दोजख भेजूँगा। मान-सिंह ने उसे रोक कर कहा कि आप प्रताप सिंह से युद्ध करने को तैयार न हों, क्योंकि आप द्वारा उनका पराजय असम्भव है। जहाँगीर ने कहा कि एक मुसलमान हजारों काफिरों को मार सकता है। क्या तुम नहीं जानते कि मुसलमान की रक्षा फरिश्ता जिब्राइल करते हैं। वह यह कह ही रहा था कि सामने राणा प्रताप का घोड़ा दिखलाई पड़ा। जहाँगीर ने प्रताप सिंह को युद्ध के लिए ललकारते हुए अपना अस्त्र उस पुरुष सिंह पर फेंका। राणा प्रताप के घोड़े ने चातुरी से हटकर वह वार बचा लिया। तब जहाँगीर के हाथी ने आक्रमण किया। राणा प्रताप—जो दूसरी ओर युद्ध में लगे थे—ने एक बार इधर दृष्टि डाली और हाथी का सूड़ काट लिया। हाथी ज्यों ही भागा त्योंही प्रताप के घोड़े ने दोनों पैर उसपर फेंक दिए। उसी समय राणा प्रताप ने तलवार निकाल कर चाहा कि इस अधम का शिर काट डालूँ। जहाँगीर ने हाथ जोड़कर अपनी प्राण-भिक्षा राणा से मांगी। हिन्दू जाति रण में भागने वाले को नहीं मारती अतः प्रताप ने उसे छोड़ दिया। उस समय जिब्राइल फरिश्ता भी शायद डर गया था। अल्ला हो अकबर का नारा लगाने वाले मुल्ला यही सोचते होंगे कि अल्लाह शायद अब हिन्दु हो गया है।

किसी कवि ने यथार्थ ही कहा है—

अभूत पुरा त्रस्त सत्रस्त दूषणः
प्रभारतो भारत भूमि भूषणः।
महाबली दुर्ग चित्तौर शासकः
प्रताप सिंहः परताप नाशकः ॥ १ ॥

अनाथ नारी जन शोक मोचनः,
गयां द्विजानां जलदश्रु मोचनः।
स एक एवा भवदार्य रोचनः,
समुल्लसल्लोहित लोललोचनः ॥ २ ॥
मुकोच कोपात् तरुणारुणोधरः,
कच प्रबन्धान् यवनी जनस्य च।
स हिन्दुना केन च रक्त विन्दुना,
न लालनीयो जगदेक रत्न यत् ॥ ३ ॥
प्रसन्न चेता बलिना धुरन्धरः,
ललल्लाटः परिणद्धकन्धरः।
मनोज्ञनेत्रः शरदिनु सुन्दरः
सवेशतोऽभूद् भुवने पुरन्दरः ॥ ४ ॥
सवैरिसैन्ये सहसा प्रवेशतः
स्ववेशतो भीमतमं तमोनयन्।
प्रताप सिहो निर्जसिहनादितः
प्रकम्पयामास न कस्य मानसम् ॥ ५ ॥
अकिञ्चनैं कल्पतरुः प्रजः स्मृतः,
स्वयं विडौजा ज्ञात वीरवन्दितः।
धृतोऽरिभिः काल इव स्वमानसे
स कल्किकल्पः कलितः कलौजनैः ॥ ६ ॥
क्षणे क्षणे यस्य रतिर्भवेत्।
पदे पदे यो बिनियातयेहरीन्।
तदद्य किं विस्मय कारणं बुधाः
गृहे गृहे सम्पत्तिर्ंचेत् स पूज्यते ॥ ७ ॥

मुस्लिम सत्ता का बिनाश—जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि औरङ्गजेब तक राज्य वृद्धि की अवस्था में था

किन्तु औरङ्गजेब के व्यवहारों से हिन्दु भारत क्षुब्ध हो गया। चारों ओर से हरि-भक्तों की आवाज आने लगी कि धर्म पर मर मिटो, दुष्टों का संहार करो। राम की सेना की जीत हुई। अग्नि-शिखा तुल्य हिन्दू-शिखा को नष्ट करने वाले अपनी दाढ़ी की लगी आग को बुझाने लगे। मरहट्टों का प्राबल्य बढ़ता गया। भगवा बाना जो सच्चा त्याग का प्रतीक है, दिल्ली पर फहराने लगा। लेकिन परमात्मा को दूसरा ही अभिष्ट था। एक तीसरी शक्ति आकर शासन करने लगी, जिसको निकालने के लिए आज भी चतुर्दिक प्रयत्न हो रहा है। सब ओर 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की गूंज है। एक हजार वर्षों से लड़ने वाली हिन्दू-जाति आज भी सतेज और सबल है। विरोधी पहाड़ को अपने शिर से तोड़ना चाहते हैं। परन्तु पहाड़ का कुछ नहीं हुआ अपितु टक्कर लगाने वाले का शिर चूर हो गया।

भारत में मुस्लिम मनोवृत्ति—भारत पर मुसलमानों ने शासन किया किन्तु उनका शासन तलवार का था। उनमें धर्म प्रचार की भावना भी थी परन्तु वहाँ तर्क का स्थान नहीं था। हिन्दुओं की कुछ संख्या मुसलमान अवश्य बनी। पर उसमें वे ही लोग हिन्दुओं की दूषित प्रथा के कारण अथवा सवर्ण हिन्दू जमीन्दारों के अत्याचारों से ऊब कर मुसलमान बने। बुद्धि-जीवी भारतीय प्रजा में इस्लाम नहीं पनपा।

पहले मुसलमान जब तक समझते थे कि हम विजेता हैं तब तक हिन्दू-मुसलिम एकता नहीं हुई। किन्तु जब राजपूत, सिक्ख और मरहट्टों का सामना हुआ तब प्रेम बढ़ा और एकता हुई। 'बिनु भय होइ न प्रीति' १८५७ में दोनों मिलकर अंग्रेजों से लड़े। दोनों के संयुक्त प्रयत्न से ब्रिटिश सत्ता नहीं हटी। तब मुसलिम मनोवृत्ति अंग्रेजों की ओर झुकी। सर

सैयद अहमद खाँ ने १८५७ का सम्पूर्ण दायित्व हिन्दुओं के शिर मढ़ना चाहा। मुस्लिम लीग का जन्म हुआ। साम्प्रदायिक बँटवारा हुआ आज ऐसी स्थिति आई हुई है कि मुस्लिम लीग भारत की स्वतन्त्रता की नौका को डुबाने के लिए दिन-रात प्रयत्न कर रही है।

आज दो प्रान्तों में लीगी मिनिष्टरी स्थित है। इन प्रान्तों के प्रधान मन्त्री स्पष्टतः हिन्दुओं के विरुद्ध हैं। बंगाल और सिन्ध में चंगेजखाँ के इतिहास की पुनरावृत्ति हो रही है। पाकिस्तान के जोश में संघर्ष हो रहे हैं। साम्प्रदायिक संघर्ष के कलकत्ता, ढाका आदि उज्ज्वल उदाहरण हैं।

भारत में मुसलमानों का सुधार—यद्यपि मुसलमानों में मजहबी धर्मान्धता विशेष होती है तथापि भारत में उसका सामना आर्य समाज से हुआ। आर्य समाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में उनकी समालोचना की, जिससे भारतीय मुस्लिम समुदाय क्षुब्ध हो गया। कादियान (पंजाब) के मुसलमान मिर्जा हसन गुलाम ने कुरान के अर्थों का परिवर्तन किया और अपने को पैगम्बर (मेहदी) अवतार सिद्ध किया। इससे कट्टर मुसलमान बहुत घबड़ाये परन्तु अन्ततोगत्वा उनके पास उपाय ही क्या था? कुछ सुधार की भावना जाग्रत हुई और कुछ सुधार हुआ भी किन्तु अब भी सुधार की विशेष आवश्यकता है।

टिप्पणी—मुस्लिम शिक्षा का आधार कुरानशरीफ है। इसमें आत्मिक उन्नति के उपदेश तो कुछ ही हैं किन्तु लूटने मारने और बध करने की आज्ञा ही विशेष है। मुसलमानों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार दूसरे देश की सुन्दर संस्कृति का संहार मुस्लिम आक्रमणकारियों ने किया है।

विहार, बंगाल तथा युक्तप्रदेश आदि की ललित कलायें, जो मजहबी जोश के कारण नष्ट कर दी गयीं, इस बात के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इसी प्रकार के धार्मिकों के सम्बन्ध में मार्क्स ने कहा था कि धर्म संसार के मजदूरों के लिए अफीम से बढ़कर और दूसरी कोई चीज नहीं, अतः इसे नष्ट कर देना चाहिए। मार्क्स फासिष्ट मनोवृत्ति के कट्टर शत्रु थे अतः पूंजीवाद का विनाश करने के लिए आजीवन उन्होंने प्रयत्न भी किया। उन्होंने कहा था कि धर्म संसार से उठा दिया जाए। आज सभ्य कहे जाने वाले राष्ट्र और संसार के सभ्य मनुष्य धर्म को हटा देना चाहते हैं। परन्तु आश्चर्य है कि तब भी संसार की प्रजा धर्म से प्रेम करती है। इतनी दुर्गति होने पर भी इसे छोड़ने को तैयार नहीं। इससे सिद्ध होता है कि धर्म का वास्तविक स्वरूप कुछ दूसरा ही है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षिदयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि—जिसे सब एक सम्मति से स्वीकार करते हों उसे मैं धर्म मानता हूँ और जिसे नहीं मानते उसे अधर्म मानता हूँ। उदाहरणतः सदाचार, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता आदि हैं। इनका विरोध कौन करेगा? सब इसे एक दृष्टि से स्वीकार करते हैं। इस दृष्टि से स्वामी दयानन्द का धर्म प्रजातन्त्र के आधार पर है। पं० जवाहर लाल नेहरू आर्य समाज के ऊपर मुस्लिम विरोधी मनो वृत्तिका आरोप करते हैं किन्तु ऐसी बात नहीं हैं। आर्यसमाज के धर्म के अन्दर फासिज्म का प्रबल विरोध है।

इस्लाम फासिष्ट है। मुहम्मद साहब का कहना था कि मैं अन्तिम पैगम्बर हूँ, खुदा द्वारा आज्ञापित हूँ। मुझ से और खुदा से सीधा सम्बन्ध है। जिब्राइल फरिश्ता हम दोनों का पत्र-

बाहक है। मेरे बाद दूसरा और कोई पैगम्बर नहीं आ सकता। यह धार्मिक अधिनायक वाद (फासिज्म) के अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इसी कुशिक्षा के वशीभूत होकर लखनऊ में भाषण करते हुए मुहम्मद अली ने कहा था कि 'एक शराबी और साधारण मुसलमान भी महात्मा गान्धी से लाखो दर्जा अच्छा है।' पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, श्रीनाथू शङ्कर आदि महान् आत्माओं की हत्यायें इसी मनोवृत्ति के प्रतीक स्वरूप हैं। आर्य समाज इस कुत्सित और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति का समूल विनाश चाहता है। आर्य समाज को किसी व्यक्ति विशेष मुसलमान से घृणा नहीं अपितु ऐसी कुशिक्षाओं के प्रति विरोध है जिसमें दूसरे धर्म वालों को मारने की आज्ञा दी गयी हो। यदि आर्य समाज के इस पावन विचार से किसी भी आर्य समाजी की हत्या होती है तो इसकी कुछ भी चिन्ता आर्य समाज को नहीं है।

थियोसोफिकल सोसाईटी और भारत—इसमें सन्देह नहीं कि भारत पर थियोसोफिकल सोसाईटी का विशेष प्रभाव पड़ा है। विशेषतः वे लोग जो रिटायर्ड जीवन व्यतीत करते हैं, इसके अधिक भक्त हैं। इसके संस्थापक श्री मैडम ब्लेवटस्की और श्री अलकार साहब हैं। श्री मैडम एक रूसी महिला थीं और श्री अल्कार साहब अमेरिका के रहने वाले थे। अमेरिका में दोनों ने मिलकर थियोसोफिकल सोसाईटी का जन्म दिया। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी से भी पत्र व्यवहार हुआ था। उन लोगों ने स्वामीजीके चरणों में नतमस्तक हो उनको आध्यात्मिक विद्या का गुरु बनाया था। भारत में अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए दोनों महानुभाव आए। थोड़े दिनों तक स्वामीके साथ मिलकर प्रचार-कार्य भी चला किन्तु अन्त

में मत-द्वैध हो गया और स्वामी जी उन लोगों की चाल से ताड़ गए। तब उन लोगों ने अलग होकर कार्य क्रम चलाया। मैडम ब्लेवेटेरकी की मृत्यु के पश्चात आयरिश महिला श्री एनी बेसेन्ट भारत आयीं। उन्होंने अपने भाषण और लेखों द्वारा थियासोफिकल सोसाईटी का खूब प्रचार किया। स्कूल और कालेज भी खुले किन्तु एनीबेसैन्ट का आन्तरिक उद्देश्य थियोसोफिकल सोसाईटी द्वारा ईसाइयत का प्रचार करना था। अतः कई अवतारों की कल्पना करके ईसा को भी अवतारी पुरुष घोषित किया गया। एक मद्रासी बालक कृष्णमूर्त्ति को ईसा का अवतार घोषित कर यूरोप ले जाकर उन्हें ईसाइयत की शिक्षा दी जाने लगी। परन्तु कृष्ण मूर्त्ति को धर्म प्रचार से कुछ भी रुचि नहीं थी वे टेनिस खेल के शौकीन हो गए। तब यूरोप के लोगों ने उन्हें टेनिस खेलने वाला ईसा कहना आरम्भ किया।

लेड बिटर साहब के कार्यों से मद्रास के शिक्षित हिन्दू असन्तुष्ट हो गए। थियासोफिकल सोसाईटी के विचारों से हिन्दू समाज सतर्क हो गया। इस प्रकार भारत विदेशी हथकण्डों का शिकार नहीं हो पाया। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि थियासोफिकल सोसाइटी द्वारा भारतीय ग्रन्थों का अनुवाद वैदेशिक भाषाओं में हुआ परन्तु हानि यह हुई कि हिन्दू भावना जाती रही। इतना बड़ा भारत विधर्मी बन रहा था परन्तु थियासोफिकल सोसाईटी वाले आँख बन्द कर ब्रह्म का दर्शन कर रहे थे। ये ठण्ढे मार्ग से चलना चाहते हैं। इनके रक्त में क्रान्तिकारी भावना नहीं है। ये निरुद्धेश्य और भारतीय संस्कृति से विमुख हैं। भारतीय युवकों को इससे सतर्क रहना चाहिए।

रामकृष्ण मिशन—आर्य समाज के वृहद् आन्दोलन के

पश्चात् श्रीस्वामी रामकृष्ण मिशन का कार्य आरम्भ हुआ। आध्यात्मिक धारा का स्रोत प्रवाहित करना इसका उद्देश्य था। गीता और उपनिषदों के आधार पर समस्त संसार ब्रह्म है, का धुँआधार प्रचार रामकृष्णमिशन के द्वारा हुआ। अभी इसका साहित्य अंग्रेजी में अधिकांश रूप से पाया जाता है। श्री परमहंस रामकृष्णजी के प्रधान शिष्य श्री स्वामी विवेकानन्द जाने सर्व धर्म सम्मेलन शिकागो (अमेरिका) में तहल्का मचा दिया। स्वामी विवेकानन्द की भाषणशैली अत्यन्त ही हृदयाकर्षक थी। उनकी प्रकाण्ड प्रतिभा से प्रभावित होकर विदेश के सैकड़ों व्यक्ति उनके शिष्य हो गए। निश्चय ही इन पर योगिराज स्वामी दयानन्द के कार्य क्रम का प्रभाव था। आज भी मिशन का कार्य चल रहा है।

आज भारत के बड़े बड़े शहरों में अंग्रेजी भाषा के मर्मज्ञ सन्यासी भारतीय वेश-भूषा में घूमते हुए पाये जाते हैं। यदि उनसे बातें करिए तो वे 'ब्रह्म' से इधर उधर की बात ही नहीं करते हैं। सारा बंगाल मुसलमान और ईसाई बन रहा है तथापि इनका ब्रह्मवाद करवट नहीं ले रहा है। समाज के अन्तर्गत प्रचलित रूढ़ियों को तोड़ने की शिक्षा नहीं देते हैं। साथ ही यह शिक्षा भी नहीं देते कि पुनः यह भारत प्राचीनता की ओर दृष्टि दौड़ावे एवं पुनः यहाँ पर हिन्दू संस्कृति का बोलबाला हो। गीता का उपदेश भी यही है। महात्मा राम कृष्ण इसीका उपदेश देते थे। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः, गीता।

राधा स्वामी दयालबाग—भारतवर्ष मत मतान्तरों का कुंज है। यहाँ पर जो कोई थोड़ा सा भी बुद्धिमान् होता है कि एक नया समुदाय चला देता है। राधा स्वामी भी एक वैसा

ही मत है। इसका प्रचार शिल्प कला के द्वारा हो रहा है। बेचारे भोले भाले आदमी इसके शिकार बनाए जाते हैं। इनके यहाँ गुरु का अधिकाधिक आदर है और गुरु के सामने परमात्मा भी तुच्छ है। ये आपस में सत्संग करते हैं किन्तु अपनी पुस्तकों को दूसरों को दिखाते नहीं हैं। शिष्य बनाने के लिए गुरु का जूठा खाया जाता है।

सार बचन में लिखा है कि गुरु को पान खिलावे, पीक कराके सो पीक अपने पी जाए। भला इससे घृणित और अनुचित प्रचार और क्या हो सकता है? महान् आश्चर्य तो इस पर है कि इस २०वीं शताब्दी में भी गुरुडम के फेर में देशके युवक फँस जाते हैं। निश्चय ही गुरुडम जाति का महान् शत्रु है। गुरुडम से बुद्धि मलान और दूषित हो जाती है। यूरोप के लोग भी इसी गुरुडम के शिकार हैं। तभी तो एक ईसा को ही ईश्वर का पुत्र मान कर उनके पद-चिन्हों पर चल रहे हैं। मुसलमान भी मुहम्मद के पीछे अपनी समस्त बुद्धि समर्पित किए हुए हैं। इन भले आदमियों को यह भी समझ में नहीं आता कि कोई महात्मा किसी समय किसी बात को लेकर आता है और उसका प्रचार करता है। इसके अतिरिक्त सत्यता तो एक ही है। मुहम्मद, ईसा और कबीर आदि उसके प्रचारक हैं। नियम अनादि, सनातन और कभी नष्ट नहीं होने वाला है। गुरुडम समाज का प्रबल शत्रु और बुद्धि-वृद्धि में बाधक है।

अतः बुद्धिजीवियों को चाहिए कि जाति जीवन तथा राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए राष्ट्र से उक्त गुरुडम विष को सर्वदा के लिए नष्ट कर दें। अन्यथा यह वह भट्टी है जिसमें समस्त सद्‌गुण जलते हैं और अन्धविश्वास का प्रसार होता है।

गान्धी युग--यह युग गान्धी का है। सम्पूर्ण विश्व में गान्धी जी के व्यक्तित्व का बोलबाला है। उनका सत्याग्रह और अहिंसा का सिद्धान्त पीड़ित, शोषित और दलित दल के लिए अमोघ अस्त्र है। गान्धीजी का विचार निर्धनों के लिए अमृत और अत्याचारों की समाप्ति के लिए रामबाण है। इसकी ही छत्र-छाया में भारत आज स्वराज्य के सन्निकट पहुँचा हुआ है। गान्धी जी ने यूरोपीय सिद्धान्त के मूल में कठोर कुठाराघात किया। जो कहता था कि योग्य ही ठहर सकता है। बराबर संघर्ष जारी है, गान्धी जी ने बताया कि नहीं संघर्ष से नाश और सहयोग से उन्नति होती है। अतः सर्वमित्र बनो। गीता के 'अद्वेष्ट सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च' के गान्धी जी साक्षात् अवतार हैं। वे भारत के विशेष हितैषी होते हुए भी विश्व के शुभचिन्तक हैं। उनकी दृष्टि में एक अंग्रेज भी दया का पात्र है। उनका कहना है कि मैं यह इसलिए नहीं कहता कि अंग्रेज लोग हमारे देश के नहीं हैं। अतः इसे छोड़ कर चले जायें, परन्तु इसलिए कि दूसरे देश पर उनका बलात् शासन करना भौतिक पतन का हेतु है। इस कारण से अंग्रेज लोग इसे सहर्ष छोड़ दें। भारत की एकता रक्षा के लिए वे जिन्ना ऐसे जिद्दी और हठधर्मी आदमी के पास भी जा सकते हैं। यह उनकी महत्ता का चिह्न है। महात्मा जी की दृष्टि बड़ी है। वे समस्त संसार को आत्मवत् देखते हैं अतएव विश्व बन्द्य हैं। यह सब होते हुए भी दुष्टों ने इससे अनुचित लाभ उठाया। इन्ही की भावुकता से भारतीय साम्प्रदायिक जमात लीग इतना आगे बढ़ सकी। इनके अहिंसा के उपदेशों से हिन्दू कायर हो गए और उन्होंने आक्रमण का प्रतिकार करना भी छोड़ दिया। अपनी रक्षा करने में भी ये

असफल रहे। हिन्दुओं की स्त्रियाँ और बच्चे दिन-दहाड़े लूटे जा रहे हैं। मुस्लिम प्रान्त और मुस्लिम राज्यों में जो पाकिस्तानी विचार रखने वाले मुसलमानों के प्रयत्नों तथा कार्यों से हिन्दुओं का जीवन विपत्ति में पड़ा हुआ है। गान्धी जी इसे दूर करने के लिए अहिंसक बनने का उपदेश देते हैं और श्री गणेश शङ्कर विद्यार्थी का दृष्टान्त देकर साम्प्रदायिक वैमनस्य को दूर करना चाहते हैं किन्तु हिंदुओं की इतनी बड़ी जन-हानि होने पर भी वे अपने को नहीं बचा सके। गान्धी जी की अहिंसा हिन्दुओं की मृत्यु का कारण बना। दुष्टों को दण्ड देने का तथा आततायियों के बध करने का उपदेश हमारे शास्त्रों में आया है। गीता का उपदेश भी आततायी दुर्योधन के बध के निमित्त ही हुआ था अतः मनु का यह सिद्धांत सर्वथा सत्य ही है कि 'दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति' अर्थात् दण्ड नीति सोई प्रजा की रक्षा करती है, बिना दण्ड से प्रजा में मत्स्य न्याय प्रचलित हो जाएगा। क्या महात्मा जी एवं अन्य अन्य अनुयायियों को विश्वास है कि यदि वे कलकत्ते के साम्प्रदायिक संघर्ष में रहते तो उनका जीवन सरलता से सुरक्षित रह सकता था। अरे वहाँ पर वे निरीह और दुहमुहें बच्चे जिन्होंने न तो हिन्दू-मुस्लिम भेद भाव को ही समझा है और न तो दाढ़ी और चुटिया की परिभाषा ही जानी है वे छुरा के शिकार बनाए गए। अलीगढ़, कल्याणगंज की गायें बेचारी तो सबों को ठीक समय पर दूध देती थीं किन्तु वे भी मुस्लिम युनिवर्सिटी के गुण्डों द्वारा जला दी गयीं। ठीक है, आततायी कभी भले बुरे का विचार नहीं करता है। अतः उसके लिए तो दण्ड ही आवश्यक है। यही कारण है कि जहाँ पर दो विरोधी शक्तियाँ एक दूसरे से टक्कर

लेने के लिए तैयार हैं वहाँ साम्प्रदायिक संघर्ष नहीं होता। उदाहरण स्वरूप पंजाब प्रान्त है। जहाँ पर सम्भवतः ही कदाचित् संघर्ष होते हों। १८५७ में हिन्दू-मुस्लिम एकता का कारण मरहठों की वीरता है। और हरिभाऊ का प्रयत्न है, जिसने दिल्ली तख्त को तोड़ दिया। अतः मुसलमानों को इस निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ा कि हमें एक होना चाहिए। 'विनु भय होय न प्रीति' लोकोक्ति भी तो इसी का समर्थन करती है। अतः महात्मा गान्धी जी के अनुयायियों को अहिंसा की नीति में संशोधन करना चाहिए अन्यथा हिन्दू-भारत का नाम मिट जाएगा।

रूस के पालतू—आज हमारे देश के कुछ नवयुवक अकारण रूसी विचारों से अधिक प्रभावित हो रहे हैं। कुछ लोगों का तो विश्वास है कि भारतीय दर्शन, ज्योतिष तथा विज्ञान आदि सबों पर यूनानी विचारकों का प्रभाव पड़ा है। इसीसे वशीभूत होकर कुछ कम्युनिष्ट सज्जन रूस का गीत गा रहे हैं। कम्युनिज्म का विचार यूरोप से चला। इसमें कार्ल मार्क्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मार्क्स का जन्म जर्मनी के यहूदी परिवार में हुआ था। वे समस्त संसार के दर्शनों के अध्ययन करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि संसार के भीतर सर्वदा द्वन्द्व जारी है परिस्थिति वश सम्पूर्ण वस्तुओं की उत्पत्ति होती है। उसने आदर्शवादी हेगल के सिद्धान्तों का अपनी दृष्टि से अच्छा रूप दिया। मार्क्स का कहना है कि हेगल दर्शन से शीपसिन कर रहा था। उसकी दृष्टि से वर्ग युद्ध अधिक आधार पर अवलम्बित है। अतः आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के निमित्त उसने सारे संसार को संगठित होने के लिए आह्वान किया। मार्क्स के विचारों

का प्रभाव लेलिन पर पड़ा और वह अपने देश रूस में ऐसी ही सरकार स्थापित करने में समर्थ हो सका।

लेनिन की मृत्यु के पश्चात् स्टालिन का आधिपत्य हुआ। जारशाही को समाप्त कर किसान राज्य स्थापित करने वाले ट्राएस्की और बुखारिन आदि देशद्रोही घोषित किए गए। कहने को तो रूस में किसान राज्य है परन्तु स्टालिन की पार्टी की ही चलती बनती है। इन लोगों ने समस्त संसार में कम्युनिज्म के प्रचार का संकल्प किया। किन्तु यूरोपीय द्वितीय महायुद्ध में यह संकल्प त्यागना पड़ा और कम्युनिष्टों का सम्बन्ध रूस से टूट गया परन्तु मानसिक दासता इतनी बढ़ी कि ये रूस के संकेत पर नाचने और गाने लगे। भारतीय नवयुवकों पर भी इसका प्रभाव पड़ा है और रूस की चिन्ता में रत रहने वाले रूसी विचारों से भारत को स्वतन्त्र करना चाहता है। परिणाम स्वरूप रूस को बिना पैसे के प्रचारक मिल गए। भारत को इनके द्वारा स्वतन्त्रता मिलेगी कि नहीं यह तो असम्भव है ही परन्तु भारतीयता अवश्य मिट्टी में मिल जाएगी। साथ ही आचारिक पद्धति का विनाश हो जाएगा क्योंकि कम्युनिज्म का सिद्धान्त चार्वाक का मार्ग है, जो कि आसुरी सम्पत्ति का भण्डार है। जिसके विषय में भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

प्रवृतिञ्च निवृतिञ्च जनाः न विदुरासुरा,
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते।
असायमप्रतिष्ठंते जगदा हुरनीश्वरम्,
अपरस्पर संभूतं किमन्यत्काम हेतुकम्॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः,
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतो हितः॥

आशापाशशहैर्वद्धाः काम क्रोध परायणाः,
ईहन्ते काम भोगार्थमन्यायेनार्थ संचयान् ॥
इदमद्य मया लब्धमिदं प्राप्स्ये मनोरथान्,
इद मस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
असौमया हतः शत्रुः हनिष्ये चापरानपि,
ईश्वरोऽहमहंभोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी ॥

आदि बातें इनके लिए चरितार्थ होती हैं। ये लोग कर्त्तव्य की शिक्षा नहीं देते किन्तु अधिकार की शिक्षा देने में ही अग्रणी हैं। सदाचार का कोई भी स्थान नहीं है। हम दूसरे का उपकार क्यों करें, संसार के लिए यातना क्यों झेलें आदि बातों के लिए कोई भी उत्तर कम्युनिज्म में नहीं है। वहाँ उदर-पूर्त्ति ही सुख और स्त्री आदि के साथ प्रसंग ही स्वर्ग है। आर्थिक प्रश्न ही बलिदान का हेतु है। जब इस प्रकार उनके सिद्धान्त हैं तब देश तथा जाति का क्या कल्याण होगा, यह बात मेरी समझ में नहीं आती है। जातियाँ केवल रोटी के लिए बलिदान नहीं करती अपितु किसी महान् उद्देश्य के लिए बलिदान करती हैं। क्या अंग्रेजी सरकार द्वारा रोटी का प्रबन्ध कर देने पर हम स्वतन्त्रता का संघर्ष स्थगित कर देंगे। हमें सांस्कृतिक और धार्मिक स्वतंत्रता भी चाहिए।

रूसी परिन्दे भारत को इन सब बातों से शून्य रखना चाहते हैं। स्वयं रूस ने भी अपने देश को इन सब बातों से वञ्चित रखा है। अन्यथा जब से कांग्रेसी सरकार स्थापित हुई तब से कागज का कोटा उन लोगों को नहीं मिला जो कि धार्मिक पुस्तक प्रकाशित कराना चाहते थे। अतः ऐसी नीति तो भारत में दफना दी गयी। भारत में तो वही विचार पुष्पित और पल्लवित होगा जिसमें भारतीयता अक्षुण्ण बनी रहे।
